तपस्वी तिलक

उपहार

तपस्वी तिलक

लेखक

गोकुलचन्द्र शर्मा

प्रकाशक

साहित्य-सद्म, अलीगढ़

मुद्रक

भारतबन्धु प्रेस, अलीगढ़

प्रथमावृत्ति 2000 } चैत्र १९७९ वि० { मूल्य २) रेशमीजिल्द २।।)

प्रकाशक:-

पण्डित गोकुलचन्द्र शर्मा,

साहित्य-सद्म, अलीगढ़।

मुद्रक:-

बाबू राजेन्द्रबिहारीलाल,

भारतबन्धु प्रेस, अलीगढ़।

समर्पण

सौम्य-स्वभाव, साहित्यानुरागी, उदात्तवृत्ति

लाला ज्वालाप्रसाद जिज्ञासु

की

सेवा में,

मित्र जिज्ञासो !

आज, तुम्हारी इच्छा की लो, अर्पित है यह पूर्ति,
अवलोको, अंकित है जैसी, लोकमान्य की मूर्ति ।
चित्र सजीव स्वदेश-प्रेम का, प्रातःपूज्य, पवित्र,
कर-कमलो में शोभित हो, यह भारत-तिलक-चरित्र !

गोकुलचन्द्र शर्मा

कुछ शब्द

मित्रवर पण्डित गोकुलचन्द्र शर्मा का अनुरोध है कि मै उन की नवीन कृति 'तपस्वी तिलक' के लिए कुछ शब्द लिख दूँ। 'तपस्वी तिलक' की रचना करके पण्डित जी ने मेरी एक जीवनेच्छा पूरी की है। इस लिए उन के इस अनुरोध का पालन करना मै अपना कर्तव्य समझता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक के विषय और उस के लेखक के किसी प्रकार के परिचय या किसी की सिफ़ारिश की ज़रूरत नहीं। ऐसा कौन भारतीय होगा जिस के कानों ने लोकमान्य के अलौकिक गुणों का गान न सुना हो? हिन्दी-संसार के लिए पण्डित गोकुलचन्द्रजी भी अपरिचित नहीं। उनकी कविताएँ समय समय पर हिन्दी के सुप्रसिद्ध पत्रो में प्रकाशित होती रहती है। उन की प्रथम कृति 'प्रणवीर प्रताप' का काव्य-प्रेमियों ने समुचित समादर किया

है, थोड़े ही समय में उस के एकाधिक संस्करणों का होना और समाचार पत्रों की अनुकूल आलोचना इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन की दूसरी मौलिक कृति 'गान्धी गौरव' के विषय में भी यही बात और भी अधिक ज़ोर के साथ कही जा सकती है। फिर मैं लिखूँ तो क्या लिखूँ? जी चाहता है कि जैसे पण्डितजी ने लोकमान्य का गुण गाकर अपनी लेखनी को धन्य किया है वैसे ही मैं भी अपने हृदय-सम्राट् की स्तुति करके अपने को कृतार्थ करूँ। परन्तु, मेरा विचार है कि उस के लिए यह स्थान उपयुक्त नहीं। अतः भाव-सरिता के बाँध को न तोड़ना ही ठीक है।

हाँ, एक विषय है जिस पर कुछ कहा जा सकता है, और वह है आलोचना की कसौटी। परन्तु, मैं यहाँ इस विषय का भी उल्लेख मात्र करूँगा। सामयिक पुस्तकों की समालोचना करते समय हिन्दी के बहुत से समालोचक देशकालावस्था और लोकरुचि की ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। इन पुस्तकों के अच्छे या बुरेपन की माप में वे प्रचलित माप से काम न लेकर वामनी माप से काम लेते है। वे इन पुस्तकों की सामयिक लोकोपयोगिता की उपेक्षा करके उन्हें केवल विशुद्ध कला की कसौटी पर कसते है और फलतः उन्हें खोटी पाते है। मेरी विनम्र सम्मति में आलोचना की यह कसौटी सदोष है। सामयिक

पुस्तकों की आलोचना करते समय साहित्य की वर्तमान-
दशा, पाठकों के मानसिक विकास की अवस्था और
लोकरुचि की प्रगति पर ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक
है। मेरा विचार है कि इस कसौटी पर कसे जाने पर
'तपस्वी तिलक' समालोचकों को पूर्णतया सन्तुष्ट कर
सकेगा। इतना मुझे विश्वास है कि उस से मेरी तरह
सहस्रशः हृदयों की माँग पूरी होगी, शतशः युवकों के
चरित्र-निर्माण पर उस का सत्प्रभाव पड़ेगा, और वह
अपने सहस्रों पाठकों के चित्त को आनन्द-प्रदायक होगा,
हिन्दी-संसार में उस का समुचित समादर और प्रचार
होगा। गान्धी-गौरव पर अपना मत प्रकट करते समय
मैं ने कहा था कि छन्दों की विविधता से पुस्तक की उपा-
देयता बढ़ जाती। तपस्वी तिलक में पण्डितजी ने छन्दों
की विविधता का पूरा पूरा ध्यान रक्खा है। आशा है कि
यह बात अन्य पाठकों को भी रुचिकर होगी।

श्रीकृष्णदत्त पालीवाल।

सा
हि
त्य
स
द्
म

अ ली ग ढ़

निवेदन

एक पत्र ने लोकमान्य के समस्त जीवन-कार्य का सुन्दर चित्र इन शब्दों में खींचा था:—

"The world gave Tilak India of 1880 and Tilak gave world India of 1920." अर्थात् संसार ने तिलक को १८८० का भारत सुपुर्द किया और तिलक ने उसे लौटाकर १९२० का भारत दिया। इन चालीस वर्षों में द्विज-कुल-दीप दिलीप-तिलक ने संसार-वसिष्ठ की धरोहर भारत-सुरभी का संरक्षण ब्रिटिश-सिंह से किस प्रकार किया, यही उन की निष्काम सेवा का मर्म है; यही उन के अनुपम कर्मयोग का रहस्य है और अपूर्व बलि-दान का नमूना है। महात्मा जी के शब्दों में 'उन का जीवन वह ग्रन्थ है जिसे खोलने की ज़रूरत नहीं, वह आप ही खुला हुआ है'। भारत के राष्ट्रीय जीवन में नई रूह फूँकना उन्नीसवीं शताब्दि के इसी मनुज-मणि का कार्य था। लाला जी के कथनानुसार 'जिस समय लोग अपनी परछाईं तक से भय खाते थे, उस समय एक मात्र तिलक

ॐ

ने ही अपने विचारों को निर्भीकता से प्रकट किया।' मातृभूमि के लिए कष्ट सहन करना तो उन का स्वभाव सा हो गया था। स्वदेश-प्रेम उन की इन्द्रियवृत्ति थी। वे पुरुष-सिंह थे। देश की स्वतन्त्रता के लिए उन्हों ने चढ़ती जवानी ही में तनुत्राण धारण किया और आजीवन उसे पहने ही पहने स्वातन्त्र्य-समराङ्गण में वीरगति पाई। उतरती आयु में भी वे साहस में युवा ही रहे—जरावस्था भी उन की अनुचरी ही रही। इस दृष्टि से वे नवीन भारत के भीष्म थे। उन्हीं ने स्वराज्यान्दोलन की समुपयुक्त साधनीभूत सामान्य जनता की शुष्कप्राय भाव-भूमि को उर्वरा बनाया। इस विचार से वे भारत के पारनैल (आयर्लैण्ड का सुप्रसिद्ध नेता) थे।

अकेले लोकमान्य में जितने गुण समवेत थे उस का जोड़ इतिहास में ढूँढे नहीं मिलता। वे मेधा-मण्डित प्रथित पण्डित थे, दार्शनिक थे, वैज्ञानिक थे, पुराविद् थे, ज्योतिर्विद् थे, धर्मज्ञ थे, राजनीतिज्ञ थे, ललितकलाभिज्ञ थे, कवि थे, योद्धा थे, शिक्षक थे, सुधारक थे, नेता थे, वक्ता थे, सङ्गठन-कर्त्ता थे और क्या क्या न थे? उन की वक्तृता विशेष प्रभावशालिनी होती थी। कुछ लोगों का यह कहना है कि वे वाग्मी (Orator) न थे। उन्हें इँगलैण्ड के राजनीति-

विशारद महाकवि ग्लैडस्टन का यह वाक्य स्मरण रखना चाहिए:—

"A man may be called eloquent, who tranfers the passion or sentiment, with which he is moved himself, into the breast of another." अर्थात् वह मनुष्य जो उन रस-भावादि को जिन से वह स्वयं प्रभावित हुआ है दूसरे के हृदयङ्गम कर सकता है वाग्मी कहा जाना चाहिए। लोकमान्य के विषय में यह बात अक्षरशः सत्य है। एक बार सिटिज़न पत्र ने लिखा था:—

"Mr. Tilak is not an orator He never indulges in flashy rhetoric. His words move from him in keeping with his physiognomy plain and blunt But his earnestness, the almost Biblical simplicity of his diction, and the matter-of-fact style of his argument weave a magic in the mind of his audience" अर्थात् लो० तिलक वाग्मी नहीं हैं। वे बड़ बड़े अलङ्कारों की झंझट मे कभी नहीं पड़ते। उनके शब्द उन की सरल और स्पष्ट मुखाकृति के अनुरूप निकलते है। परन्तु, उनकी सत्यता, उनका बाइबिल का सा कथन-सारल्य और उन के तर्क की तत्त्वमयी शैली उन के श्रोताओं के मस्तिष्क मे जादू का जाल पूर देते है।

तिलक की बुद्धि सर्वतोगामिनी, विशद और विस्तीर्ण थी। उन के विचार प्रगल्भ, मनोवृत्ति उदात्त और पाण्डित्य

अगाध था। उन की भेष-भूषा सरल किन्तु गौरवमयी थी। उन का मुखमण्डल प्रसन्न और तेजोमय था, उस से प्रतिभा टपकती थी। उन के प्रतिभा-प्रसून 'ओरायन' और 'आर्कटिक होम' को देखकर 'बङ्गाली' ने इस की सूक्ति की सृष्टि की थी:—

"Vedas and Vedic laws lay hid in night,"
God said, "Let Tilak be ! and all was light."

अर्थात्

"वैदिक नियम और वेदों पर तम ने था परदा डाला,
प्रभु ने कहा, 'तिलक आने दो!' तत्क्षण था सब उजियाला।"

उन के 'गीता-रहस्य' के विषय में तो कहना ही क्या ? शताब्दियों पीछे यह ग्रन्थ-रत्न भारतीय जनता के हाथ लगा है।

लोकमान्य की दूरदर्शिता दिव्य थी। उन का सिद्धान्त-निर्णय इतना अचूक होता था कि जीवन में उस से पीछे हटने का उन्हें कभी अवसर ही न आया। वे उदारकल्प थे। मराठी टाइप का वर्तमान सुधार उन्हीं का कल्पना-प्रसूत है। उन की सङ्गठनशक्ति ग़ज़ब की थी। वे कार्य करते थे पर उस का ढोल नहीं पीटते थे। उन

के स्वर्ण-शुभ्र, प्रभात-धवल निर्मल चरित्र पर तो उन के कट्टर से कट्टर शत्रु भी लाञ्छन न लगा सके। यही चरित्र-बल उन के प्रभुत्व का प्राण था। धैर्य, स्वार्थ-त्याग, दृढ़निश्चय, निरभिमानता, परोत्कर्ष-सहिष्णुता, गुण-ग्राहता और स्पष्ट-वादिता आदि गुणों के तो मानो वे आश्रय ही थे। उन का उत्साह अदम्य और प्रयत्न दीर्घ था। उन की इच्छा शक्ति वज्र-भेदिनी थी। वे स्वदेशी के जन्म और बहिष्कार के जनक थे और थे राष्ट्र-शिक्षा के अप्रतिम पोषक। इसी से वे हमारी आशा के सूर्य थे और निराशा के काल थे और थे हमारे भावी उत्कर्ष के प्रतिबिम्ब। वे हमारे हृदयों के सम्राट् थे, राष्ट्र के राज-मुकुट थे, देश के दिव्यालङ्कार थे और धर्म के अवतार थे। संक्षेपतः वे भारतीयों की सामर्थ्य, सम्पत्ति और सेवा के सूत्रधार थे।

कृपालु पाठकवर्ग! मेरी यह रचना भारतीय जनता के आराध्य देव तिलक का परिचय मात्र है—उन के जलद-गम्भीर चरित का एक बिन्दुभर है। उन के चरित-चित्रण की मेरी बहुदिनलालित लालसा आज पूरी हुई। सतृष्ण हृदय को कुछ सन्तोष हुआ। परन्तु, राज्याभि-लाषिणी मेरी रङ्कमति तिलकोपम तिलक के लोकोत्तर

लीला-वर्णन में कहाँ तक सफल मनोरथ हुई है, इस का निर्णय सहृदय पाठक ही करे। ऐसे पुण्यचरितों के पङ्क्तिबद्ध करने में मेरा एक मात्र उद्देश होनहार हृदयों पर उन का पवित्र प्रभाव अङ्कित करना रहता है। यदि यह उद्देश किसी अंश मे सिद्ध हुआ तो मै अपना परिश्रम सफल समझूँगा। साहित्य-मर्मज्ञ पाठकों के काव्य-कुसुमोद्यान भी में मेरा यह प्रयास-प्रसून प्रस्तुत है। यदि उन्हें इस से कुछ गन्ध मिले तो मेरा अहोभाग्य! नही तो वे इसे सुकवि-सुमनों की शोभावृद्धि के लिए ही एक कोने में पड़ा रहने दें। क्योंकि, "छोटे जन ते रहत हैं शोभायुत सरताज।"

एक बात इस पुस्तक के नाम के विषय में भी कहनी है। कुछ महाशय कह सकते हैं कि तिलक ने तो कभी वन में बैठकर धूनी नही रमाई, फिर 'तपस्वी तिलक' नाम कैसे? उन से मेरा नम्र निवेदन है कि तपस्या का मर्म ही परार्थ सन्ताप-सहन होता है। इस दृष्टि-कोण से मैं तिलक को तपस्वियों का भी तिलक ही समझता हूँ और मेरी धारणा है कि बहुसंख्यक भारतीय जनता मेरे इस मत से सहमत होगी।

मुझे इस रचना में गुजराती, मराठी, हिन्दी और अँगरेज़ी के अनेक पत्रों तथा पुस्तकों से बड़ी सहायता

मिली है। उन के सम्पादकों तथा लेखकों का मै परम कृतज्ञ हूँ। मैं नहीं जानता कि मित्रवर साहित्यरत्न पण्डित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, एम. ए. और अनुज रघुवंशलाल गुप्त, विशारद के प्रति किस प्रकार अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँ। इस कृति के कितने ही अङ्गों पर उन की अमूल्य सम्मतियोंका विशेष अधिकार है। सुहृद्वर बाबू कुञ्जविहारी लाल बी. ए. एल एल. बी. भी मेरे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। जहाँ तक इस पुस्तक के रूप-रञ्जन और मुद्रण-सौन्दर्य का सम्बन्ध है उस का अधिकांश श्रेय उन्हीं के प्रेम-परिश्रम को है।

हरीनगर, पो० सासनी,
(अलीगढ)
रामनवमी, १९७९ वि०

गोकुलचन्द्र शर्मा।

अः

सर्ग-सूची

चित्रावली

॥ ॐ ॥

तपस्वी तिलक

प्रथम सर्ग

(अवतरण)

मङ्गलाचरण

[१]

जब गाण्डीव परन्तप-कर से,
गिरा, मोह-माया में भूल,
कर्म-योग के मंत्र झड़े तब,
गीता-ग्रथित-गिरा-मय फूल।
दृग खुल गये, पार्थ ने देखा,
पथ प्रशस्त पावन अनुकूल,
सस्मित श्याम-वदन की वह छवि,
हरे, हमारे बन्धन-शूल!

(२)

प्राप्त है जिन को जगत् में स्वत्व-सुख का भोग,
धन्य उन का ही मही पर जन्म-जीवन-योग।
मातृभू के मान की श्री-वृद्धि का उद्योग,
नित्यशः करते वही है मुक्त[1]—मानस लोग।

(३)

लक्ष्य पा जाता जहाँ धँस दास-बन्धन-बाण,
भक्ष्य होकर ही वहाँ बस रक्ष्य पाता त्राण।
पा सका है कौन ग़ैरों से कहाँ कल्याण ?
दास देशों को सभी जन जानते निष्प्राण।

(४)

शासकों की नीति में पद पा सकी क्या प्रीति ?
त्रासकों की रीति को तज जा सकी क्या भीति ?
पार पर किस की पड़ेगी पङ्गु प्रीति-प्रतीति ?
दम्भ से कब तक दबेगी, पूर्व—गौरव—गीति ?

(५)

भाग्य भारत का हुआ जब मन्द पाकर फूट,
अन्य जन करने लगे तब आ यहाँ धन-लूट।
एक से पाई किसी विध भाग्य वश यदि छूट।
अन्य बाधा आ पड़ी तव व्याघ्र के सम टूट।

१ स्वच्छन्द-हृदय।

(६)

जन्मभूमि विदेशियों के जाल में यों ग्रस्त,
व्यग्र थी दीना, मलीना, तीन-ताप-त्रस्त,
धर्म, धन, स्वाधीनता के अङ्ग अस्त-व्यस्त,
थे पराश्रयभूत भारत के सपूत समस्त ।

(७)

यों चरम शासन-सुधा से तृप्त कर गौराङ्ग,
भ्रान्त-भाव-भरी प्रजा को कर अधीन, अपाङ्ग ।
पूर्व-गौरव पर चढ़ा कर गौर-गौरव-रङ्ग,
आत्म-गौरव-भान क्रमशः कर रहे थे भङ्ग ।

(८)

फूट के व्यापार ने आ सात सागर पार,
देश-उरस पर किया था मृत्यु-मुष्टि-प्रहार ।
नव्य सभ्य-विचार करते थे समाज सुधार,
पूर्व-पुरुषाचार पर थे जो कठोर कुठार ।

(९)

लुब्ध हो [1]लोलुपत्व पर हम खो रहे थे स्वत्व,
गुम जिस के गर्भ में था स्वार्थ-साधक-तत्व ।
दृष्टि-रञ्जक वस्तुओं को दे विशेष महत्व,
शिल्प-कौशल का किया था नष्ट सुलालित-तत्त्व ।

१ दूसरों के सहारे में । २ पतित आचार । ३ सुन्दरता ।

(१०)

भूल भूषा, भाव, भाषा अनुकरण मे मग्न,
छोड़कर स्वातन्त्र्य-भूषण हो रहे थे नग्न।
पा रही परतन्त्रता थी प्रति विषय में वृद्धि,
दूर दौड़ी जा रही थी सब स्वदेश-समृद्धि।

(११)

सभ्यता के नाम पर था दासता का दान,
दिव्यता के दाम पर था भृत्यता का ज्ञान।
मृत्यु के मुख में पड़ा था रो रहा इतिहास,
आर्ष तत्व-ज्ञान का था हो रहा अति ह्रास।

(१२)

वन्द कारागार में था विशद-बुद्धि-विकाश,
मन्द धूलाधार मे था मान-रत्न-प्रकाश।
शोक-शय्या पर पड़ा सुख से रहा उच्छ्वास,
लोक-लज्जा का हुआ था निपट निर्जन वास।

(१३)

खेल खुलकर खेलता था भूरि भोग-विलास,
मेल मुँड़कर झेलता था उग्र उपेल-त्रास।
दे दिया था दूसरों के हाथ रक्षा-भार,
ले लिया था हाय! हमने पर-पदों का प्यार।

१ नौकरी। २ ओला।

(१४)

देश के अनुराग में यों दे स्वयं ही आग,
शेष के सम जान पूजा नयन-नैन्दन नाग।
जानते थे मिल गया है मुक्ति का आधार,
मानते थे खुल गया है कष्ट-कारा-द्वार।

(१५)

ज्ञात थी किस को भयङ्कर फणिक की फुङ्कार,
मिष्टता-मृदुता-मयी थी वणिक की हुङ्कार।
चर्म के भीतर हमारा भिद रहा था मर्म,
रक्त-रिक्त शरीर पर था शेष केवल चर्म।

(१६)

नम्रता के निकट ही था आर्यता का अंश,
दृष्टि तक्षक का पड़ा नव हृदय-भक्षक दंश।
तोप का था हाथ शिर पर, कोष पर अधिकार,
लोप—मूलक मान पर था पद-उपाधि-तुषार।

(१७)

बन्धनों के तोड़ने का बल न था अवशिष्ट,
छिन्न भिन्न हुए सभी थे वैर-भाव-विशिष्ट।
कान में फूँका सभी के जा रहा यह मंत्र,
"स्वावलम्बन में मिलेगा मुक्ति-साधन-तंत्र।"

(२२)

क्रान्ति-युग की योजना थी जो गई अनिवार्य,
भेजना भगवान को था एक युग आचार्य।
बीज बोकर वीरता के फूँक दे जो प्राण,
राष्ट्र के कर में गहा दे स्वाभिमान-कृपाण।

(२३)

मन्दिरों में, मसजिदों में, मातृभू की मूर्ति,
जो पुजा दे, फिर उठा दे देश-प्रेम-स्फूर्ति।
हाँ, स्वराज्य-ध्वज उड़ा दे देश-दल के साथ,
तीन कोटि स्वतन्त्र शूरों के उठा दे हाथ।

(२४)

कर्मवीर, कुनेत्र से भी जो न हो भयभीत,
घाम, वर्षा, शीत जिन को हो समान प्रतीत।
तुच्छ हो त्रैलोक्य-वैभव भी स्वराज्य-समक्ष,
इष्ट हो स्वार्पण न देश-रज-समकक्ष।

(२६)

नाव भारत की भँवर मे खा रही थी ताव,
देश के दुर्भाग्य-नद में था विशेष बहाव।
स्वर्ग से सहसा चला प्रभु ने पवन अनुकूल,
इष्ट तट पर पहुँचने को भर दिया मस्तूल।

(२७)

सुप्त भारत की निशा का तेज पूर्ण प्रभात,
लुप्त वैभव की दिशा का दिव्य दर्शक तात।
पूर्वजों के पुण्य—नभ का शुभ्रतम नक्षत्र,
लोक-सेवी-मनुज-मण्डल का मनोहर छत्र।

(२८)

स्वाधिकार-पुनीत-प्रतिमा, मूर्त[1] प्रत्याघात,
स्वत्व ही सेन्द्रिय[2] स्वयं वा आत्मबल अवदात।
ज्योति जगदाधार की वा दैत्य-दल का काल,
कर्म-कानन-केसरी किं वा समुन्नत भाल।

(२९)

जन्मभू का भाग्य—भूषण भाल-बिन्दु विशाल,
देश—देवी-देवकी का आठवाँ प्रिय लाल।
दर्पहन दुर्मत्तता का, दिव्यता का दूत,
† हो गया *रत्नागिरी* में रत्न तुल्य प्रसूत।

१ मूर्तिमान। २ शरीरधारी। † २३ जौलाई, १८५६ ई०।

(३०)

'बाल'-रवि को देख विकसे लोक-लोचन भव्य,
भाल-छवि भारत-धरा की हो गई तब नव्य।
तेजपुञ्ज, त्रिलोकभागी श्री तिलक-लब्ध ललाट,
विश्व-वन्द्य वसुन्धरा का था विभा विभ्राट।

(३१)

श्रीगणेश स्वराज्य का था बाल अति अभिराम,
विघ्न-बाधा की विजयिनी शक्ति का शुभ धाम।
शत्रु-दल शार्दूल, साहस-सिन्धु, साधु-सुमित्र,
वीरवर 'बलवन्तराव' सु-धीर, शुद्धचरित्र।

(३२)

चारु 'चितपावन' प्रतिष्ठित वंश का द्विजराज,
पुण्यभू पूना नगर के पूर्व-बल की लाज।
'पार्वती' पुण्यमना की गोद का आलोक,
लाल 'गंगाधर' तिलक के मोद का था ओक।

(३३)

सेतुभू[1] से दिव्यदर्शन 'बाल'-विधु को देख,
उस पश्चिम प्रान्त की थी मञ्जु मस्तक-रेख।
राष्ट्र-कीर्ति सिन्धु[2] में थी शान्ति की कल्लोल,
काल-शासन-पोत के थे पोत[3] डाँवाडोल।

[1] दक्षिण की भूमि। [2] समुद्र। [3] जहाज।

(३४)

गूँजता प्रति कर्ण में था देश का जयघोष,
हीनहृदयों को हिलाकर जो उठाता रोष।
भाग्यवादी भूमि से था भागता सन्तोष,
मानवीय स्वतन्त्रता का मिल गया था कोष।

(३५)

भेदती थी भीरुता का अद्र बनकर तीर,
बाल–भारत–केसरी की गर्जना गम्भीर:—
जन्म–स्वत्व स्वराज्य मेरा रोक लेगा कौन ?
कष्ट कारा का मुझे क्या कर सकेगा मौन ?

द्वितीय सर्ग

(बाल-लीला)

(१)

पूर्व प्रथाएँ हैं पुनीत—जीवन—निर्माता,
प्रान्त—विशेष—प्रभाव प्रकृति—परिवर्तन—दाता।
कुल—परम्परा—प्राप्त प्रधान—गुणागुण—लक्षण,
करते भव्याभव्य भावनाओं का रक्षण।

(२)

वंश-वृत्ति-अनुरूप बाल की बनतीं कृतियाँ,
अङ्कित होतीं हृदय-पटल पर सद्-स्मृतियाँ।
महाजनों के मत पर ढलतीं मन की मतियाँ,
गुरु-गाथा पर गर्वित चलतीं चित की गतियाँ।

(३)

'बाल'-भूमि मरहट्टे रठौलों की जो धरणी,
जहाँ हुए विद्वान शूर तेजस्वी-तरुणी।
पावन पर्वत-प्रान्त जहाँ की सुन्दर घाटी,
पुण्यमयी थी जहाँ पर प्रचलित परिपाटी।

(४)

ललित-श्लोक-स्तोत्र सदा शिशुओं की वाणी,
करती थी उच्चरित देव-विनती कल्याणी।
धर्म-बीज का वपन[1] अमल अन्त:करणों में,
देता था अनुराग चराचरपति-चरणों में।

(५)

अल्प आयु में बाल-अधर से मधुर-स्तुतियाँ,
रम्य रदों की मनोमुग्धकर दाड़िम-द्युतियाँ,
वटु-वचनों से व्यक्त आप्त[2]-आनन्दाहुतियाँ,
देती दिव्यानन्द नित्य थीं निर्भर नुतियाँ[3]।

(६)

स्वाभिमान के साथ भक्ति की भाव-विमलता,
वंश-अंश से प्राप्त तिलक को थी निश्चलता।
पूज्यचरण प्रपितामह की दृढ़-वृत्ति-कहानी,
केशव[4]-कर्मठ-कथा प्रान्त भर ने थी जानी।

(७)

अञ्जनगाँव—महाल—मामलेदार नामधर,
बाजीराव प्रसिद्ध पेशवा के कार्यङ्कर।
आत्म-मान की मूर्ति भक्ति के भाजन थे वे,
करते कायरता, कलङ्क के काज न थे वे।

१ बोना। २ परिजन। ३ प्रार्थनाएँ। ४ केशवराव।

(८)

⁂ हुआ पेशवा-पतन कम्पनी के कर द्वारा,
था तब पादाक्रान्त प्रान्त पश्चिम का सारा।
पाकर प्रभुता नव्य पलटता पूर्व काल है,
चलती चारों ओर नयी ही नयी चाल है।

(९)

होती तब उत्पन्न नवागत बल में निष्ठा,
प्रायः पदच्युत पूर्व न पाते पूर्ण प्रतिष्ठा।
जान कम्पनी ने परन्तु पेशवा-मर्यादा,
किया पूर्व-पद पर रखने का उनसे वादा।

(१०)

पर-पक्षी से पा परन्तु पद-प्राप्ति-प्रलोभन,
जाता है आत्मीय मानधारी का क्षोभ न।
आत्मग्लानि के साथ भृत्यता उसे न भाती,
स्वाभिमान का पतन देख भर आती छाती।

(११)

दुर्गभोग पर कभी दुराशायें न गिरेगा,
वारि-हीन अवलोक न चातक-चित्त फिरेगा।
स्वर्णिम मणिमाला-कान्ति देख क्या कमल खिलेगा?

(१२)

"जिस शरीर ने है स्वराज्य-सेवा-सुख भोगा,
क्या वह पड़ परतंत्र-पाश में नतमुख होगा ?"
दे उत्तर यों उस उपाधि में लात लगाई,
देशभक्ति-अनुरक्ति अटल, अवदात दिखाई।

(१३)

तिलक-तात गङ्गाधर के यश का भी सौरभ,
महाराष्ट्र में महक कर रहा था सु-प्रभ नभ।
उन की मुद्रा, मञ्जु, सौम्य, सरला, अभिरामा,
सर्वप्रिय थी सूक्ति सुधा सी लोक ललामा।

(१४)

वह विशुद्ध विद्यानुराग, आचार-अमलता,
निस्पृह प्रकृति, स्वतंत्र-सरस-साकार-सफलता।
पाठन-पद्धति की पटुता, गणित-प्रवीणता,
मिलती क्या सर्वत्र भीरुता-भाव-क्षीणता ?

(१५)

सुत का भव्य भविष्य जनक, जननी ही रचते,
उस के उर पर चित्र सदा उन के ही खिचते।
वे उस के उत्कर्ष, पतन की शिला जमाते,
मनोभवन मे पुण्यप्रभा वे ही प्रकटाते।

१ नीचा मुँह किये। २ निर्मल। ३ चहरा। ४ सुन्दर कथन।

(१६)

माता की ममता के साथ पिता का ताड़न,
अनुचित-स्नेहज-धूल-धृष्टता का है झाड़न।
उस से निर्मल मनोमुकुर[1] में हो प्रतिबिम्बित,
विकसित होते गुण-रत्नों के अद्भुत दर्शन।

(१७)

तिलक-तेज की मूल पिता की पाठ-प्रणाली,
बाल बाल में भरती थी सुस्फूर्ति निराली।
आत्म-शक्ति के उपजाती थी अङ्कुर नूतन,
धर्म-शील ने सत्य-स्रोत कब किये प्रसृत न?

(१८)

मिली बाल को घर ही पर प्रारम्भिक शिक्षा,
थे जिस से संप्राप्त आत्मबल,ताप-तितिक्षा[3]।
महाराष्ट्र में शिशुओं का शुभ-मंत्रोच्चारण,
था निजत्व के निखिल भाव का आदिम कारण।

(१९)

मञ्जु मराठी-वर्ण-मातृभाषा के द्वारा,
आदि वर्ण का पाठ बाल ने सीखा सारा।
विजय-सन[4] विजयादशमी को गुरु-गृह-दीक्षा-
मयी तिलक को मिली, हुई प्रारम्भ परीक्षा।

१ मन का दर्पण। २ भीतरी विचार। ३ सहना। ४ १८६१ ई०।

(२०)

विमल बटु[1]-व्रत बिना न होती सिद्ध भारती[2],
विना भारती भव्य न उतरे ब्रह्म—आरती ।
मनोयोग की महाशक्ति का जीव यही व्रत,
साधन, आराधन की अविचल नींव यही व्रत ।

(२१)

यदपि दुलारा बाल साथ सेवक के जाता,
किन्तु गोद, कन्धे पर था न कभी चढ़ पाता ।
नहीं पठन में इष्ट कभी था अनुचित लालन,
तिलक-तात के लिए प्रथम था बटु-व्रत-पालन ।

(२२)

रक्षाभर के लिए किया था भृत्यायोजन[3],
क्योंकि चपल बटु रखते लाभालाभ प्रवोध न ।
" सुख में विद्या कहाँ ? कहाँ विद्यार्जन में सुख ? "
सदा शुभैषी[4] पिता इसे रखते थे सम्मुख ।

(२३)

फलतः तिलक सदैव स्वावलम्बी, स्वाध्यायी,
अनालस्य, आजन्म रहे अति अध्यवसायी ।
एकायन[5] वे ध्येय-सिद्धि पर प्राण वारते,
निज-बल-निर्भर निपतित[6]-नौका रहे तारते ।

१ ब्रह्मचारी । २ वाणी । ३ नौकर का प्रबन्ध । ४ शुभवाले । ५ एकचित्त । ६ गिरे हुए ।

(२४)

अत्यभिरुचि 'बाल' की गणित में गई विलोकी,
थी कुशाग्रधी-कान्ति जगत से नई विलोकी ।
प्रखर पिता की प्रतिभा थी सुत में संवर्धित,
गणित-तत्त्व जिन की अदम्य थी अतुल अतर्कित ।

(२५)

थे समायुष संस्कृतज्ञता तभी विलक्षण,
त्यों साहित्यिक सुरुचि रही थी सरस विचक्षण ।
अमरकोश था कण्ठ समास-विचार गहन था,
धातु-ज्ञान धीमान बाल का तिमिर-दहन था ।

(२६)

धार्मिकता का अङ्कुर पठन के साथ पुष्ट था,
होता गुरुजन-हृदय जिसे अवलोक तुष्ट था ।
यदपि न थे उपवीती तदपि सन्ध्या के ज्ञाता,
था केवल गुरु-मंत्र जो कि था उन्हें न आता ।

(२८)

ब्रह्म-सूत्र धारण कर ब्रह्म-विचार पढ़ा था,
ब्रह्मचर्य पर ब्रह्म-तेज का सार चढ़ा था।
मंत्र-पूत[1] मन प्रणव-प्रेम[2] में पूर्ण पगा था,
कर्म-योग के युग का नूतन योग लगा था।

(२९)

हुआ पिता-पद-परिवर्तन अब पुण्यपुरी[3] को,
गये तिलक भी सङ्ग लिये वटु-वृत्ति-धुरी को।
ख्यात वहाँ थी एक मराठी की चटुशाला,
बनी तिलक की तपोभूमि भी वही विशाला।

(३०)

विद्यालय में देख छात्रलीला का अभिनय[4],
महापुरुष के गुण विशेष का मिलता परिचय।
दृष्टि तिलक में पड़ी प्रकृत हठ की वह छाया,
जिसका पुण्य-प्रवेश मातृ-मठ मे था पाया।

(३१)

बाल हठी का हठ न हट सका सङ्कट-शठ से,
कपट, कूट का जूट जुट सका कब कर्मठ से ?
भिड़ा भीम बन सदा भयङ्कर भय के भट से,
घटा न घोर घमण्ड देश का उस के घट से।

१ पवित्र । २ परमात्मा । ३ पूना । ४ नाटक का खेल ।

(३२)

शैशव में ही किया तर्क यज्ञोपवीत पर,
बहलाया दे सूत्र तात ने उसे प्रीते[1] कर।
माँगा उसको किन्तु बाल से जभी भीत कर,
दिया किसी विध भी न तिलक ने हठ प्रतीत कर।

(३३)

दे शारीरिक दण्ड तात ने सबक सिखाया,
तड़ित्[2] रूप ताड़न का था प्रत्यक्ष दिखाया।
किन्तु तर्क के बिना बाल ने एक न मानी,
आत्म-पक्ष-प्रिय होते बहुधा कर्मठ ज्ञानी।

(३४)

हुई पाठशाला मे अब उसकी हठलीला,
प्रकटी प्रकृति प्रसिद्ध बाल की वर्जनशीला।
छात्रों ने खा कहीं मूँगफलियाँ कुछ मिलके,
पाठ-भवन में छोड़ दिये थे उन के छिलके।

(३५)

यदपि तिलक जो खाते थे घर ही पर खाते,
विद्यालय मे कभी न लाते तथा चबाते।
किन्तु साथ के पढ़नेवालों की शैतानी,
ऐसा शिक्षित कौन कि जिसने कभी न जानी ?

१ प्रसन्न। २ बिजली।

(३६)

रखते हैं ये चपल उपद्रव की भी रचना,
सहज नहीं गोरों का उन चपटों से बचना।
चुप चुप छिलके छोड़ तिलक-सम्मुख खिसकाये,
इतने में गुरुवर्य वहाँ बाहर से आये।

(३७)

देखा आकर किन्तु किसी ने नाम न बोला,
जान गये थे सभी, किन्तु था भेद न खोला।
तब सचेत हो, कहा गुरु ने बड़े रोष से,
"करता हूँ इस बार क्षमा मैं तुम्हें दोष से।

(३८)

जाओ, छिलके फेंक स्वच्छ कमरे को कर दो,
केवल इतना दण्ड स्वयं निज कर से भर दो।
फेंके सब ने किन्तु तिलक ने छुए न छिलके,
कभी उन्होंने वहाँ बनाये ताड़ न तिल के।

(३९)

बालवर्ग ने उन्हें दोष में यद्यपि साना,
सत्य-हठी ने किन्तु किसी का कहा न माना।
नहीं इष्ट था उन्हें यद्यपि मर्यादोल्लंघन[1],
तदपि न अनुचित बात सहन करता निर्भय मन।

१ नियम का तोड़ना।

(४०)

बोले वे "जो कर्म किया ही नहीं दण्ड क्यों ?
मानूँ मैं फिर वचन अनर्गल[1] अण्डवण्ड क्यों ?"
बात बढ़ी तो दबा बग़ल में बस्ता आये,
गुरु-निदेश के भङ्ग भाव का ध्यान न लाये।

(४१)

यद्यपि गुरु के ओंठ क्रोध के मारे फड़के,
मान-हानि अवलोक बड़े वे तड़के भड़के।
† तिलक-तात की मातहती में थे इस कारण,
किया किसी विध वेग कोप का किन्तु निवारण।

(४२)

लिखा शिकायत-पत्र दिखाई सुत-सदोषता,
पढ़कर जिसको बढ़ी पिता की भी सरोषता।
'प्रथित[2] हठी है तिलक', किन्तु वे जान रहे थे,
मिथ्या-वचन-विरुद्ध यदपि वे मान रहे थे।

(४३)

उन्हे ज्ञान था 'बाल' बाल भी वचन-पाल है,
ध्रुव-श्रद्धा-मय सत्य बाल की सुदृढ ढाल है।
अतः पुत्र को पूछ उन्हों ने लिख प्रत्युत्तर,
बाल-गुरु को किया वहाँ इस भाँति निरुत्तर.-

१ विचारशून्य। † तिलक के पिता शिक्षा-विभाग के असिस्टेण्ट इन्स्पेक्टर थे। २ प्रसिद्ध।

(४४)

"बाल बज़ारू वस्तु नहीं है कोई खाता,
रखता है आचार-भङ्ग से तनिक न नाता।"
सच्चरित्रता सदा तिलक की तिलक रूप थी,
आकृति अमल,अदोष ओज की झलक रूप थी।

(४५)

गुरु ने की जब खोज निपट निर्दोषी पाया,
छूकर निकली न थी तिलक को छल की छाया।
गुरु-विरोध यदि उन्हें स्वत्व पर सह्य कहीं था,
हठ था, शठता—पन्थ उन्हें पर ग्राह्य नहीं था।

(४६)

वाद-भूमि था गणित-विषय, साहित्यालोचन,
बाल-तर्क था शिक्षक-मत में विनैयोन्मोचन।
सहपाठी घिस स्लेट लगाते जोड़ जहाँ थे,
वही ज़बानी कर वे करते होड़ वहाँ थे।

(४७)

कहाँ मराठी ज्ञान? बढ़ी जब संस्कृतज्ञता,
बारह पर ही विस्मैयकर थी भाव-विज्ञता।
की किशोर ने तब कादम्बरि—पठन—लालसा,
सुनकर जिसको तात, तिलक-गुरुवर्ग था हँसा।

१ झगड़े का कारण। २ धृष्टता। ३ आश्चर्यकारक। ४ संस्कृत का ऊँचे दर्जे का काव्य है। ५

(४८)

वाणभट्ट[1] के काव्य-ग्रन्थ की सूक्ष्मदर्शिता,[2]
जानें बस मर्मज्ञ विज्ञ ही रसस्पर्शिता।
"अभी कुछ दिनों छोटे छोटे पुस्तक पढ़ लो,
लेना उस को जब कि विचारों मे कुछ बढ़लो।"

(४९)

पा यह उत्तर वहीं हठीले ने हठ ठाना,
त्वरित तात ने जटिल प्रश्न दे किया वहाना:-
"सिद्ध करो यह गणित प्रश्न तो पुस्तक पाओ,
यदि न हुआ तो बस, जाओ, फिर खेलो, खाओ।"

(५०)

सोचा '[3]नौ मन तेल विना न नचेगी राधा,'
हठ की अपने आप सुदूर हटेगी वाधा।
धुनी जुट गया किन्तु, खुलीं तब जटिल गुत्थियाँ,
पाते कृतसङ्कल्प[4] सदा ही सहज युक्तियाँ।

(५१)

पिता निरुत्तर हुए हर्ष-नद उर में उमड़ा,
ज्ञान-मुग्ध वात्सल्य-वारि-घन मन मे घुमड़ा।
स्नेह-सुधा से किया तिलक का सम्यक्[5] सिञ्चन,
सत्सुत-सम्मुख त्रिभुवन-वैभव गिना अकिञ्चन।

१ कादम्बरी के रचयिता। २ बारीकी। ३ 'न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी'। ४ पक्के इरादावाले ५ समुचित।

(५२)

त्वरित ला दिया ग्रन्थ शुभाशीर्वचन सुनाया:-
"विशद बुद्धि पर पड़ी कहीं न कुसङ्गच्छाया,
तो अवश्य तू तिलक-रूप कुल-भूषण होगा,
पावन-प्रतिभा-प्रखर-प्रभा का पूषण[1] होगा।"

(५३)

सुपथगामिनी शक्ति जहाँ है मधुफल लाती,
विपथगामिनी वही विकट विषफल उपजाती।
वाष्प[2]-वेग मर्यादित हो, होता वर वाहक,
वही विस्फुटित हुआ, न होता किस का दाहक ?

(५४)

होनहार के लक्षण सदा विलक्षण देखे,
लोकोत्तर ही उसके कृत्य प्रतिक्षण देखे।
वंश-तिलक क्या, लोक-तिलक होकर दिखलाया,
पूतात्मा[3] पर पड़ी न पतितात्मा की छाया।

(५५)

था समाप्ति पर अभी मातृ-भाषा का शिक्षण,
माँ थी मुदित विलोक पुत्र के पावन लक्षण।
सुत हित साधा शुद्ध ¶ अमावस्या-व्रत जिसने,
श्रद्धा-युत थे किये सुराराधन कृत कितने ?

१ सूर्य। २ भाफ। ३ पवित्रात्मा। ¶ श्रीमती पार्वतीबाई ने तिलक की चिरायुष्य के लिए १२ वर्ष अमावस्या व्रत रक्खा था।

(५६)

सुत-विवाह की सुध से थी सरसाती छाती,
फलित मनोरथ देख न फूली हृदय समाती।
फैलाती थी मनोभवन मे प्रभा-जाल सा,
पुत्रवधू के प्रिय-दर्शन की प्रबल लालसा।

(५७)

किसे ज्ञात है किन्तु, कहाँ कृतान्त की लीला?
नचवाती क्या नृत्य दैवगति नर्तन-शीला?
दुर्निवार[1] दुरदृष्ट-वार वीरों का घालक,
होते है हा हन्त! पात्र उस के क्या बालक?

(५८)

वज्र-वार था वही बाल की प्रथम परीक्षा,
दुर्विध[2] तूने की कब, किस की, कहाँ प्रतीक्षा?
माता के वात्सल्य-वृक्ष की छाया छलकर,
क्या तू हुआ निहाल बाल-दल कोमल दलकर?

(५९)

मचल मचल कर तिलक गोद में जिस की किलके,
पिण्डोदक दे रहे उसे थे जौ के, तिल के!
भाव-सुधा का कोप हहह! वह बन्द हुआ था,
ओत-प्रोत[3] उत्साह-स्रोत हा! मन्द हुआ था।

१ कठिनता से रुकनेवाला। २ दुर्भाग्य। ३ भरा हुआ।

(६०)

वह दुलार का द्वार अरे ! अवरुद्ध हुआ था,
किस से करे पुकार ? बाल अब बुद्ध[1] हुआ था।
प्रिय-वियोग-शोक-क्षत हैं किस के कब भरते ?
आता अन्त न हन्त ! सभी है धीरज धरते।

(६१)

जन्म, मरण की है सदैव विधि के कर डोरी,
उस पर हर्ष, विषाद मोह-ममता है कोरी।
जिस का जितना स्वार्थ अधिक उतना वह रोता,
मरणोत्तर[2] क्या किये मनुज के कुछ भी होता ?

---

१ ज्ञानवान्। मरने के पीछे।

तृतीय सर्ग

(प्रबोध)

---

(१)

पावन प्रकृत प्रेम प्राणी को
करता है प्रदान देवत्व,
प्रेम-भवन मे ही मुमुक्षु को
मिलता मानव-जीवन-तत्व ।
सङ्गति से, स्वभाव-समता से
होता सहज-स्नेह-सञ्चार,
मनुज-जाति के मञ्जु मिलन में
बहती विश्व-प्रेम की धार ।

(२)

आता है आत्मीय भाव का
इसी उदयगिरि से आलोक,
जिस की विभा देखकर प्रमुदित
होते मानव-कोक[1]-त्रिलोक।
इस से ही विचार-वीजाङ्कुर
वढ़कर सुमन-सुफल-संयुक्त,
करते हैं इस विश्व-पथिक को
जीवन-जन्य श्रान्ति[2] से मुक्त।

(३)

तिलक स्वदेशी-प्रेम प्रकृत[3] था—
अन्तस्तल में था वह व्याप्त,
मिलते लोकमान्य-जीवन से
इस के सु-प्रमाण पर्याप्त[4]।
लिया विदेशी लम्प बाल ने
एक वार अवलोक सुवेश,
पाती चारु चित्तरञ्जकता
बाल-दृष्टि में सदा प्रवेश।

१ चकवा चकवी। २ थकावट। ३ स्वाभाविक (natural)। ४ काफी।

(४)

कुछ ही दिन पीछे चिमनी ने
धारण किया धूम्र[1] परिधान,
हुआ उसे उज्ज्वल करने को
तव आकृष्ट बाल का ध्यान।
लेते ही टूटी वो टुकड़े
पड़े भूमि पर अस्त-व्यस्त[2],
देखा उधर, गिरा वस्त्रों पर
इधर फैलकर तैल समस्त।

(५)

दुःखित थे दुर्गन्ध भर गई
भूरि भवन भर में सर्वत्र,
उलटे सीधे गिरे तिमिर में
यत्र तत्र सब पोथी पत्र।
चपतों की चिन्ता ने घेरा
देखा खड़ा पिता का रोप,
हठी बाल अब भूल चौकड़ी
पड़ा खाट पर था निर्दोप।

१ धुँए के रङ्ग का। २ बिखरे हुए।

(६)

सन्नाटा सा देख पिता भी
पहुँचे पाठ-भवन के पास,
साधे मौन बाल को देखा
नतमुख[1], अति उद्विग्न, उदास।
बुला बन्धु गोविन्दराव को
दिखा बाल का वेश विपन्न[2],
नादानी पर हँसे, किन्तु मन
हुआ सौम्यता[3] देख प्रसन्न।

(७)

हँसने में थी टली आपदा
तिलक हुए तब हर्षित-चित्त,
वैदेशिक पदार्थ—प्रियता का
लगे सोचने गूढ़ निमित्त[4]।
होती हैं सामान्य दृष्टि में
बातें जो बहुधा अति क्षुद्र,
वही विवेकशील को होती
सूक्ष्म रूप में सिद्ध समुद्र।

१ नीचा मुँह किये हुए। २ बिगड़ा हुआ। ३ सादगी। ४कारण।

(८)

'एक गई तो और मिलेगी'
थी यद्यपि साधारण बात,
किन्तु तिलक की विशद[1] दृष्टि ने
देखा इस में मर्माघात[2]।
उन के नयन-गगन में घूमा
बार बार वह लम्प विलोल,
कृत्रिम कच्चा काँच कहीं क्या
पाता मौलिकता[3] का मोल ?

(९)

देशी दीपक से बढ़कर हैं
उन में क्या क्या कला विशेष?
नेत्र-रञ्जिनी चारु चिमनियाँ
हैं मिथ्या मणियों का वेष।
खनिज[4] तैल से ज्योति हरण कर
करतीं दिव्य दृष्टि का ह्रास,
तन, मन, धन तीनों पर करके
प्रभुता देतीं तीनों त्रास।

१ निर्मल। २ भीतरी मार। ३ वास्तविकता (originality)।
४ खान से निकला हुआ (मिट्टी का)।

(१०)

हाथ जोड़कर किया बाल ने
उसे दूर से दण्ड-प्रणाम,
कभी भूलकर भी न लम्प का
लिया तिलक ने था फिर नाम।
लोकमान्य ! तू देश-प्रेम का
निस्संशय ही था अवतार,
नैसर्गिक¹ नेता था, तेरे
कृत्यों में क्या आयु-विचार ?

(११)

मुग्ध मनोरञ्जकता पर हैं
होते जहाँ अधिकतर छात्र,
वहाँ विदेशी वस्तु-ग्रहण से
तिलक ! तुम्हारा काँपा गात्र।
भव्य भेष में तुम्हे दासता-
दर्शन का आया आभास,
देखा था विलासिता² द्वारा
देश-द्रव्य का दारुण ह्रास।

१ कुदरती। २ ऐश (Luxury)।

(१२)

भाता भारतीय जनता को
ऐसा बाल--विवाह--प्रचार,
मानो पितृ पा न पावेंगे
इस के बिना मोक्ष का द्वार।
पाया है असंख्य लोगों ने
इस का यहाँ विपाक्त प्रसाद,
भला तिलक ही फिर क्यों होते
प्रचलित-कुल-प्रथा- अपवाद?

(१३)

सुत-विवाह में चटक भड़क की
चमक चञ्चला चारों ओर,
चतुर-चक्षु भी चौंधा देती
व्यर्थ व्ययों का बढ़ता ज़ोर।
मार-महासायक सी होती
वहाँ लोक-लज्जा की मार,
लुटती है कितनों के कुल की
उस अभिनय में अहो! बहार।

१ मुस्तसना, बचे हुए (Exception) । २ बिजली । ३ कामदेव ।

(१४)

वर, बरात के बदन-गगन पर
तनें विदेशी वस्त्र वितान[1],
बजा बजाकर धौंसे धन पर
होता मन को मोद महान।
वहाँ बाल के विमल हृदय पर
था न शौक़ का नाम निशान,
वयोवृद्ध[2] भी लज जाते थे
उस की रुचि का कर अनुमान।

(१५)

मिलते हैं श्वसुरालय से कुछ
जामाता को केलि[3]-पादार्थ,
उन्नत जीवन में जिनका कुछ
होता नहीं प्रयोग यथार्थ।
विद्या-व्यसनी का विनोद पर,
कर सकते क्या क्रीड़ा-द्रव्य?
ज्ञानागार—ग्रन्थ—गाथा ही
होती है उस को तो अर्घ्य[4]।

१ तम्बू। २ बड़ी उम्रवाले। ३ खिलौने। ४ पूजने योग्य।

(१६)

तुच्छ खिलौनों के बदले मे
विमल विचारों के भाण्डार,
ग्रन्थ-रत्न पाने की इच्छा
हुई तिलक की वहाँ उदार।
किया श्वसुर ने भी वैसा ही
साधा फिर भी लोकाचार,
भेजे ग्रन्थ बाल को वाञ्छित[1]
तथा खिलौने भी दो चार।

(१७)

देखा ऊनषोड़शी[2] वय में
इतना कहाँ विलास-त्याग ?
उपवन मे विचरण करते भी
बाल-तपी का विमल विराग!
पाते है अध्येयनशील[3] ही
ज्ञानसिन्धु के उज्ज्वल रत्न,
अध्यवसायी का अमोघ[4] ही
होता है दृढ़ता-युत यत्न।

१ इच्छित। २. पन्द्रह की। ३ पढ़नेवाले। ४ अव्यर्थ।

(१८)

मौलिकता पर ही रहती है
श्रमशीलों की सुन्दर दृष्टि,
भाती नहीं उन्हें है कुछ भी
भाषान्तर[1]-भावों की सृष्टि।
मननशीलता द्वारा करके
प्राप्त काव्य-ग्रन्थों का तत्व,
तिलक जमाते थे भाषा को
समझ वस्तुतः[2] उस पर स्वत्व।

(१९)

एक वार गुरु ने बतलाया,
"पढ़ो सभी ले ग्रन्थ सटीक,
तभी मिलेगी गूढ़[3]-कल्प-मय
नैषध[4]-काव्य-मर्म की लीक।"
गुरु-वचनों के पालन में था
किया किसी ने भी न प्रमाद,
किन्तु तीव्रधी[5] तिलक न लाये
करते रहे मूल से याद।

१ अनुवाद। २ वास्तव में। ३ गहरी सूझवाला।
४ "नैषध" नामक काव्य। ५ तेज़ बुद्धिवाले।

(२०)

कहा, "स्वयं भाषान्तर कर मैं
काम चला लूँगा गुरुराज !
होता पर-भाषान्तर प्रायः
द्रव्य-दिमाग-अपव्यय साज।"
गुरु चिढ़ गये, बाल की हठ थी,
फिर क्या था? बढ़ गया विवाद,
थे औचित्य-मार्ग पर बढ़ते
तिलक स्वतंत्र-बुद्धि अविषाद।

(२१)

प्रथमाध्यापक ने भी मानी
यद्यपि युक्ति-युक्त वह बात,
उद्धतता का दोष किन्तु था
शाला-नियम-भङ्ग विख्यात।
'शाला तजें, दण्ड भोगें वा,'
शेष नहीं था अन्य उपाय,
पर अयथार्थ-वचन-पालन को
मिली न अन्तःकरण-सहाय।

१ उचितता; सत्यता। २ अविनय। ३ अनुचित।

(२२)

बुद्धि बेच कर पढ़ने को थे
तिलक समझते पूरा पाप,
शाला छोड़ चल दिये किन्तु न
भाया अनुचित रागालाप।
भरती हुए अन्य शाला में
दत्तचित्त[1] करते थे काम,
बढ़ता गया ज्ञान-वारिधि यों
आया बुध-गणना में नाम।

(२३)

एक वार ट्रेनिङ्ग-प्रिन्सिपल
'काशीनाथ पात्र–दातार,'[2]
इच्छुक थे व्याकरण-ज्ञान के
पर न, पठन का था आधार।
नव पद्धति[3] से सुगम मार्ग की
लगी हुई थी मन में चाह,
किन्तु पुराने पण्डित उन का
बढ़ा न सकते थे उत्साह।

१ मन लगाकर। २ प्रिन्सपल काशीनाथ की अल्ल थी। ३ प्रणाली।

(२४)

बतलाया उपयुक्त व्यक्ति तब
एक मित्र ने बालक बाल,
सहसा समझ न सके प्रिन्सिपल
बाल तिलक का ज्ञान विशाल।
किन्तु, परीक्षा के स्वरूप में
किया बाल से पठनारम्भ,
दृग-पट खुले, दूर था तब तो
उनका क्षुद्र—भावना—दम्भ।

(२५)

प्रकृत-प्रणाली देख बाल की
चकित हुए मन मे 'दातार'[1],
स्वाभाविक प्रवृत्ति पर निर्भर
है पाठन के विविध प्रकार।
क्या ट्रेनिङ्ग करेगा उस को
जिसे न पूरा विषय-ज्ञान,
बिना अभिज्ञ हुए लँगड़ा है
शिक्षा-विधि का कोरा ज्ञान।

१ पूर्ण शास्त्री।

(२६)

'बाल' नाम लेने में उन का
अब सुकुचाते थे विद्वान,
अतः उन्हें 'बलवन्तराव' कह
दिया सभी ने समुचित मान ।
उच्चकोटि के व्यक्ति इसीविध
पाते हैं निज गुण से नाम,
उनकी सुयश-सुरभि[1] फैलाते
कार्य-कल्पतरु-पुष्प-ललाम ।

(२७)

कहाँ किशोरावस्था कोमल ?
कहाँ प्रखर[2] पाण्डित्य प्रबुद्ध ?
कहाँ कुमार-क्रीड़ा के दिन ?
कहाँ गभीर विचार-विशुद्ध ?
होनहार युवकों का होता
आदि काल से अद्भुत ढङ्ग,
बुद्धि-विचक्षण के लक्षण लख
होता विद्वन्मण्डल[3] दङ्ग ।

१ सुगन्ध । २ तेज़ । ३ विद्वानों का समुदाय ।

(२८)

दिन प्रति होते जाते थे वे
बुध-मण्डल के प्रियता-पात्र,
किन्तु न जीवन-जङ्ग जिताती
पाठ-पठन की क्षमता[1] मात्र ।
कर्मवीर को करनी पड़ती
दैव—परीक्षाएँ उत्तीर्ण,
जिन की दुर्भरता करती है
कापुरुषों[2] का हृदय विदीर्ण ।

(२९)

मातृ-स्नेह-सौख्य[3] से तो थे
पहले ही से वञ्चित वाल,
किन्तु नहीं सन्तुष्ट हुआ था
इतने ही से काल कराल ।
गङ्गाधर का गोदच्छाया—
हरण हुआ अब उसको इष्ट,
दीन-दशा पर भी न दया तू
कभी दिखाता रे दुर्दृष्ट[4] !

१ शक्ति । २ कायरों । ३ सुख । ४ दुर्दैव।

(३०)

क्या कर्मिष्ठों के मार्गों में
कण्टक बोकर हे दुर्दैव,
सफल हुआ तू? तो भी तेरी
चलती कुटिला चाल सदैव।
अङ्कुश-हीन कलेभ के सम अब
तिलक हुए सब विध स्वच्छन्द,
इसी आयु में आज़ादी पा
बिगड़े बहुधा बालक-वृन्द।

(३१)

बाल-मण्डली की विलासिता
पाती है विकास इस काल,
कितनों की प्रतिभा, प्रज्ञा का
होता हन्त! ह्रास इस काल,
इद्रिय-इन्द्रजाल मे पड़कर
होकर भोग-दास इस काल,
कितने जीवन-भू मे बोते
बहुधा ताप, त्रास इस काल।

१ हाथी का बच्चा। २ बुद्धि।

(३२)

तिलक तपोधन को न प्रलोभन
किन्तु, कभी थे ये पर्याप्त,
पद्म[1]-पत्र पर पड कर पानी
कभी हुआ क्या उस में व्याप्त ?
गार्हस्थिक झञ्झट मे यद्यपि
बीते थे उनको छः मास,
देने ही का निर्णय ठाना
देख, 'प्रवेश-परीक्षा[2]' पास ।

(३३)

गणित-पत्र को अल्पकाल में
करके जभी किया प्रस्थान,
किया साथ के छात्रों ने था
तभी विफलता का अनुमान ।
फल आया तो सफल ही न थे,
रहे गणित में सर्व-श्रेष्ठ,
सभी सहाध्यायी थे सचकित,
हर्ष-मग्न थे परिजन, ज्येष्ठ[3] ।

१ कमल । २ एण्ट्रेंस परीक्षा । ३ बड़े ।

(३४)

मनोयोग, इच्छा-बल द्वारा
मिलती अल्प काल में सिद्धि,
मेधावी[1] के श्रम से होती
शीघ्र शुभङ्कर ज्ञान-प्रवृद्धि ।
ग्रन्थ-ज्ञान पर ही अवलम्बित
रहता नहीं तीव्रधी[2] छात्र,
शत शत भाव व्यक्त करता है
लेकर गुरु का आश्रय मात्र ।

(३५)

" दिव्य विचार-विलोचन देता
कालिज ही का शिक्षण भव्य,
उन्नत भावों के उद्गम[3] का
है वह स्रोत निरन्तर नव्य ।"
इसी धारणा से भारत का
युवक-वर्ग हो उस पर मुग्ध,
चाव सहित पीने जाता है
हिंस्र व्याघ्री[4]-बाला का दुग्ध ।

१ परिष्कृत बुद्धिवाला । २ ज़हीन । ३ निकास । ४ सिंहनी ।

(३६)

† तिलक देव ने भी अब 'दक्षिण-
कालिज' मे था किया प्रवेश,
उच्चकोटि की ज्ञान-प्राप्ति का
रख उर मे उन्नत उद्देश।
पर जब अन्तर्जीवन देखा
मिला उन्हें परिवर्तित भेष,
भारतीय आचार आदि से
पाया बन्धुवर्ग का द्वेष।

(३७)

रटा रटा नोटों से मानी
लेकर सब दिमाग़, कर दीन,
गिटपिट-भाषी गिरगिट-गण की
देखी थी बस वहाँ मशीन।
ए. बी. से बी. ए. तक भी पढ़
रहते वे तेली के बैल।
जीवन भर कर्दममय करते
जो स्वदेश की गौरव-गैल।

† १८७६ ई० (Decon College) २ कीचड़ से भरी हुई।

(३८)

ढल ढल कर विदेश-साँचे में
खोकर निजता, हो पर-भक्त,
गुण गा गाकर पर-प्रभुता के
फूले, चूस राष्ट्र का रक्त।
भूल, भाव आत्माभिमान का
गुरुता भड़क-झाड़ में झोंक,
पूर्व-पुराण-प्रिय जनता को
बन जाते हैं जीवन जोंक।

(३९)

"आडम्बर से आच्छादित है
अहो! अधोगति का यह कूप,
शीघ्र बनेगा इस गति से तो
भारतीयता—पतन—स्तूप।
† तक्षशिला—नालिन्द—मठों से
भूषित थी जो भारत-भूमि,
कैसे आत्म—मान रक्खेगी
यों विदेश-चरणों को चूमि?

१ इतिहास। † पूर्वकाल में ये दोनों विश्व-विख्यात विद्यापीठ थे।

(४०)

यद्यपि भारतीय—सेनाएँ
सुनती हैं विदेश का बैराडे,
क्या राष्ट्रीय-भाव में भी हा!
भारत ! तू होगा इँगलेण्ड ?
क्या हिन्दुत्व नष्ट ही होगा ?
होगी दस्यु आर्य-सन्तान ?
होंगे क्या अवतीर्ण यहाँ अब
धारण किये हैटे भगवान ?"

(४१)

हृदय हिल गया सोच सोचकर
भारत का भविष्य दुर्दान्त,
देश-दुर्दशा किस सहृदय को
करती है न कहाँ पर क्लान्त ?
किन्तु, तिलक त्रस्त न होते थे
देख पॅरिस्थितियाँ प्रतिकूल,
करते हैं कृतवीर कहीं क्या
भाग भयों से भारी भूल ?

१ बाजा । २ टोपी । ३ दु:खी । ४ दशाएँ (Situation)

(४२)

प्रतिकूलता प्रबल करती है
कर्मवीर का निर्णय-सेतु[1],
बाधा-बाढ़ नहीं होती है
उस के अङ्ग-भङ्ग का हेतु।
विषम-विपत्ति-तरङ्ग देख कर
उठती उस की उच्च उमङ्ग,
जो उत्तुङ्ग[2] ऊर्मि[3] से लेती
टक्कर बनकर भीषण शृङ्ग।

(४३)

किया त्वरित सङ्कल्प तिलक ने,
"पाप-वृक्ष को जड़ से खोद,
रम्य-रसाल[4]-राष्ट्र-भावों से
भर दूँगा भारत की गोद।
रोपूँगा पूर्वाभिमान के
पौधे, जो पाकर कुछ काल,
तरुण-तरुच्छाया से छादित[5]
कर देंगे भारत का भाल।"

१ पुल। २ बहुत ऊँची। ३ लहर। ४ आम। ५ ढका हुआ।

(४४)

लिया यही आदर्श तिलक ने
नई सभ्यता के विपरीत,
उन्हें अनुकरण में होता था
पूर्व-मान का पतन प्रतीत।
'जिनसीवाला,' 'नासिक' क्लब में
था विभक्त छात्रालय-वर्ग,
'नासिक' क्लब ने पूर्व-प्रथा का
किया सर्वथा था उत्सर्ग[1]।

(४५)

सहभोजन[2] से छुआ-छूत पर
छिड़क तुषार[3]-तोय की धार,
सोडा, सूट, बूट का ही था
भोज-भवन में पूर्ण-प्रचार।
पूर्व—प्रथा—पालन—पक्षी था
'जिनसीवाला' का समुदाय,
सन्ध्या, शौच कृत्य थे उस की
उन्नति के उत्कृष्ट उपाय।

१ त्याग। २ एक साथ खाना (Interdining)। ३ पाला।

(४६)

था स्वभावतः मान्य तिलक को
सुन्दर सुकर सनातन-पक्ष,
देशी-भाव दीप्त रहता था
तिलक—दृगंद्वय[1]—द्वार-समक्ष।
लेशमात्र आचार-मलिनता
उन्हें घृणय[2] थी यथा सदैव,
दम्भजन्य सङ्कीर्णाशयता,[3]
द्वेष-बुद्धि थी त्याज्य तथैव[4]।

(४७)

धार्मिक कट्टरता का उन में
था शैशव[5] से आदर-भाव,
फिर शिक्षा, अनुभव का उन पर
पड़ा पूर्णतः शुद्ध प्रभाव।
प्रतिभा प्रखर धर्म-श्रद्धा से
प्रकटाती थी नूतन तत्व,
गूढ़ रहस्यों के द्वारा वे
दिखलाते थे धर्म-महत्व।

१ दोनों नेत्र। २ घृणा के योग्य। तङ्गदिली (narrow-mindedness.) । ४ त्योंही। ५ बचपन।

(४८)

अन्तःकरण अमल था उन का
किन्तु नहीं था मिथ्या-स्नेह,
तीव्र तर्क द्वारा करते थे
भग्न गर्व-गरिमा का गेह।
मनोदेवता की स्वीकृति पर
निर्भर था उनका व्यापार,
¶ 'ब्लएट' नाम पड़ने कारण
था उनका ऐसा व्यवहार।

(४६)

उनकी गणित-दक्षता पर थे
लुब्ध यहाँ के भी आचार्य,
कालिज के कमरे मे भी था
किन्तु, तिलक का हठ अनिवार्य।
हल न हुआ † हौथर्नवेट से
जटिल प्रश्न पुस्तक का एक,
मिला न उत्तर, यद्यपि उसने
घर पर भी की युक्ति अनेक।

¶ स्काट के केनिलवर्थ उपन्यास मे ब्लण्ट नाम का एक पात्र है। उस का खरा व्यवहार तिलक से मिलता है। इसी से सहपाठी उन्हें ब्लण्ट कहते थे। † गणित के प्रोफ़ेसर का नाम था।

(५०)

ज्योंही पुस्तक को अशुद्ध कह
कहा उसे करने को शुद्ध,
तभी तिलक ने 'नहीं' बोल कर
ठाना प्रोफ़ैसर से युद्ध।
किया बोर्ड पर सिद्ध स्वयं जा
प्रोफ़ैसर तब हुए अवाक्,
शिक्षक, शिष्य सभी ने मानी
गणित विषय में उनकी धाक।

(५१)

देती नहीं एक घटना ही
उन के गणित-ज्ञान का शोध,
उलझन में उन से सब साथी
रहे सीखते रीति सुबोध।
इस प्रकार प्रोफ़ैसर को भी
मिल जाती थी श्रम से मुक्ति,
करती थी सन्तुष्ट सभी को
तिलक-गणित की अद्भुत युक्ति।

१ चुप। २ छुटकारा।

(५२)

किन्तु, तिलक के समाधान के
साधन थे न यहाँ भरपूर,
शिक्षा क्या यदि हुई न कोई
शङ्का शिष्य-हृदय से दूर ?
देख 'एलफिस्टन कालिज' में
शिक्षण का कुछ उत्तर[1] ढङ्ग,
नगर बम्बई मे पढ़ने की
सहसा उर में उठी उमङ्ग ।

(५३)

अभिलाषा थी ज्ञानार्जन की
था न परीक्षा उनका ध्येय,
पारङ्गत[2] अध्यापक ही थे
उन्नत आकाक्षा का श्रेय[3] ।
सानुकूल साधन पाकर था
हुआ तिलक का चित्त प्रहृष्ट[4],
किन्तु पुराना विद्यालय था
करता रहा ध्यान आकृष्ट ।

१ बढ़कर । २ परम चतुर । ३ सहारा । ४ बहुत खुश ।

(५४)

पाते पहले श्रेय जहाँ है
उसे कीर्त करते कृतविज्ञ,
सदा प्रथम पूज्यों में श्रद्धा
रखते सज्जन सत्यप्रतिज्ञ।
प्रथमावस्था मे सीखा हो
जहाँ बैठकर शील, शऊर,
उस की यशोवृद्धि करने में
होते विमुख कृतघ्नी, क्रूर।

(५५)

अतः परीक्षा के अवसर पर
दिया बम्बई-कॉलिज त्याग,
गये लौट 'दक्षिण कालिज' मे
किया प्रदर्शित यों अनुराग।
डिग्री ली उस विद्यालय से
जहाँ किया था प्रथम प्रवेश,
केवल गणित-ज्ञान-सम्पादन
था बम्बई-गमन-उद्देश।

१ प्रसिद्ध। २ अहसानमन्द। ३ एलफिस्टन कालेज। ४ बी. ए. की उपाधि।

(५६)

कार्य-क्षेत्र राजनैतिक हो
जिसने अपना किया पसन्द,
वह अवश्य क़ानून-ज्ञान का
ज्ञाता हो स्वच्छन्द अमन्द।
इसी लिए कानून-परीक्षा[1]
यदपि तिलक ने की उत्तीर्ण,
किन्तु हृदय था देश-दशा को
देख देखकर दग्ध[2], विदीर्ण[3]।

(५७)

किया कभी न जन्मभर भी था
न्यायालय में जा अभ्यास,
तो भी उन की प्रतिभा का था
हुआ प्रखर, परिपूर्ण विकास।
लेते थे वे स्वयं कुछ दिनों
शिक्षा हित क़ानूनी क्लास,
किन्तु लूटकर लोगों से धन
कभी न भाया नैतिक[4] ह्रास।

१ एल एल. बी.। २ जला हुआ। ३ फटा हुआ। ४ सदाचारिक।

(५८)

लोकमान्य ने लोक-दृष्टि में
इस प्रकार पाकर भी मान,
माना जन-सेवा ही में था
लक्ष्य महान, आत्म-सम्मान।
इँग्लिश के व्यवहार-ज्ञान में
देखा जब हो चुके समर्थ,
पर-भाषा में अधिक शक्ति का
व्यय करना तब जाना व्यर्थ।

(५९)

संमिश्रित विविधा विद्याएं
बाल-बुद्धि में थीं अभिव्यक्त[1],
थे विपरीत-कलाओं के वे
पण्डित तुल्य रूप से शक्त[2]।
रहती है गणितानुराग से
बहुधा भाव-रसिकता दूर,
रङ्क अङ्क कब कर सकते हैं
शुचि सुवर्ण[3]-समता भरपूर ?

१ प्रकट। २ समर्थ। ३ सुन्दर वर्ण (अक्षर)।

(६०)

गणित-ज्ञानी तिलक, तदपि थे
कोमलतम कवित्व के धाम,
जन्मसिद्ध प्रतिभा पाती यदि
क्षेत्र, दिखाती अपना काम।
किन्तु अधीन राष्ट्र के कवि क्या
लिख सकते स्वतन्त्र साहित्य?
अन्धों को है अन्धकार ही
उगे न वा नभ मे आदित्य[1]।

(६१)

कब पल्लव, प्रसून पनपे हैं
जहाँ न जीवन[2] पाती मूल?
जलता जहाँ पेट-पावक[3] हो
कहाँ कवित्व-कला की तूल[4]?
लोकमान्य का मूल-लक्ष्य था
पहले करना प्राप्त स्वराज,
जिस के मिलने से ही सजते
स्वयं कला-कौशल के साज।

१ सूर्य। २ जल। ३ आग। ४ रुई।

—

(६२)

एक काल में एक कार्य ही
करते थे वे कृत-सङ्कल्प,
निर्भर[1]-शक्ति-योग दे उस में
कभी उठाते थे न विकल्प[2]।
कालिज में प्रवेश करने पर
था उनका जब दुर्बल गात्र,
पद पद पर थे उन्हें बनाते
बहुधा छात्र हँसी का पात्र।

(६३)

कभी जुकाम, कभी शिर-पीड़ा
कभी पेट में गुड़गुड़-नाद,
कभी ताप[3]-सन्ताप, दिये थे
दुर्बलता ने दिव्य-प्रसाद।
"विना शरीर-सङ्गठन होता
कभी न ठीक मानसिक काम,
स्वस्थ-चित्तता का होता है
पुष्ट अङ्ग ही पावन–धाम।

१ पूर्ण। २ वहम। ३ ज्वर।

(६४)

अङ्ग-पुष्टि के शुभ साधन हैं
ब्रह्मचर्य—पालन, व्यायाम,
शुद्धाचार, श्रीश[1] में श्रद्धा,
पूत[2]-भाव-मय प्राणायाम।"
यह विचार, दौर्बल्य[3]-दमन का
दृढ सङ्कल्प किया तत्काल,
पड़ते थे जिसके पीछे फिर
उस पर मर मिटते थे बाल।

(६५)

जिस पर जुटे उसी की चिन्ता
थी प्रधान बस आठों याम[4],
शिथिल हुआ अध्ययन, प्रतिक्षण
सम्मुख रहता था व्यायाम।
बाल वही, जो थक जाते थे
करने मे दस दण्ड-प्रणाम,
डण्ड आठ सौ लगा एक दम
लेते थे अब कहीं विराम।

१ भगवान्। २ पवित्र। ३ कमज़ोरी। ४ पहर।

(६६)

एक वर्ष के श्रम में वे, जो
बने सुदामा[1] के थे मित्र,
टक्कर लगा भूरि भीतों से
लगे दिखाने भीम-चरित्र।
थोड़ा ही सा खाने पर जो
करते नित्य दवा की खोज,
मोटी मोटी दुर्जन रोटी
था उनका साधारण भोज।

(६७)

अल्प-भोज-वालों का करते
'वीशीवाले'[2] अति सत्कार,
हृष्ट-पुष्ट युवकों को लखकर
पड़ता उन पर मृत्यु-तुपार।
प्रिय होती है उन्हे सदा ही
पतली दुबली वावू-सृष्टि,
रखते है भोजन—व्यवसायी
दाम-दासिनी, दुष्टा दृष्टि।

१ सुदामा का दुर्बल गात्र प्रसिद्ध है। २ महाराष्ट्र मे होटल को 'वीशी' कहते है।

(६८)

देखा, तिलक साफ़ करते हैं
जब दुर्जन रोटी पर हाथ,
बोला बीशीवाला, "करिए,
और कहीं प्रबन्ध अब नाथ !
मिलें और दो चार आप से
तो देवाला निकले नित्य,
बाँधे बसन बोरिया अपना
इस बीशी के सारे भृत्य।

(६६)

"पूरा दाम दिया है, पूरे
भोजन का भी है अधिकार,"
यों कह, लगा तिलक ने दी तब
उस में एक बार फटकार।
घृत का मूल्य अलग देकर फिर
दिया उसे भी कुछ सन्तोष,
इच्छा-बल से एक साल में
बढ़ा बाल का था बेल-कोष[१]।

[१] ताक़त का ख़ज़ाना।

(७०)

जो सहपाठी हँसते थे, वे
दबे तिलक की धुन अवलोक।
स्वयं तिलक को होता था अब
उनका स्वास्थ्य देखकर शोक।
पीते देख एक साथी को
'लाइम'[1] का चम्मचभर नित्य,
कहा उन्होंने, "स्वास्थ्य-सुधारक
कभी न हो सकता यह कृत्य।"

(७१)

बढ़ा वाद तो उठा तिलक ने
बोतल भर कर ली उदरस्थ[2],
चम्मच, चकित सहाध्यायी के
पड़ा सभी को दृष्टि करस्थ[3]।
"सखे! दण्ड समुचित पाओगे
ठहरो तनिक, आप ही आप,
यह औषध है, अशन नहीं,"
यों कहकर उसने किया प्रलाप।

१ चीष की बनी एक अँगरेज़ी दवा थी। २ पेट में। ३ हाथ में।

(७२)

डण्डों के सम्मुख न दवा का
होता दण्ड किन्तु उद्दण्ड,
क्या पछाड़ पर्वत को देगा
आँख दिखाकर पवन प्रचण्ड?
हँसते हँसते हज़म कर गये
हुआ तिलक को कुछ न विकार,
कब गरिष्ठ अथवा अरिष्ट की
चली गठीला गात्र निहार?

(७३)

किया तिलक ने मल्ल-युद्ध में
मुष्टि-कला¹ मे भी अभ्यास,
किन्तु तैरने मे तो उन को
था अत्यन्त आत्म-विश्वास।
दो दो घण्टे तैर एक दम
जल-क्रीड़ा का ले आनन्द,
नौका-सञ्चालन-कौशल² की
दिखलाते थे प्रगति अमन्द।

१ घूँसेबाज़ी। २ नाव चलाना (Rowing)।

(७४)

एक बार † शिवरात्रि-काल पर
काशी-गङ्गा का था घाट,
तेरह सौ फुट भर प्रशस्त था
संवर्धित सुरसरि का पाट।
चला मित्र-दल उसमें तरने,
करने को आपस में होड,
किन्तु चार सङ्गी तो लौटे
थककर उन्हें बीच मे छोड़।

(७५)

तिलक तैरकर ‡ पार जा लगे,
लौटे नौका खेकर आप,
था व्यायाम-वृद्ध-विक्रम का
§ अधिक आयु पर भी यह माप।
इच्छा मार्ग बनाती अपना
प्राप्त कराती दुर्लभ शक्ति,
उन्नत, पतित इसी के द्वारा
होते सदा विश्व में व्यक्ति।

† १८९१ ई० ।‡ दूसरी पार केवल १०, १२ फ़ीट के अन्तर पर पहुँचे थे। § ४३ वर्ष की आयु।

(७६)

एकार्थेन, अनन्यंपर नर को
मिलती सदा सिद्धि सर्वत्र,
रखती कृतसङ्कल्प-शीश पर
स्वयं सफलता ही जय-छत्र।
वहुधन्धी वहुधा देखे हैं
विविधा चिन्ताओं से व्याप्त,
किसी कार्य को चारु रूप से
वे कर पाते नहीं समाप्त।

(७७)

करते थे व्यायाम-काल में
कक्षा का न तिलक कुछ ध्यान,
'यैस् सर' कह कर करा उपस्थिति
करते थे तुरन्त प्रस्थान।
एक वार ज्यों ही वाहर थे
हुआ † प्रिन्सिपल से साक्षात्,
पूछे जाने पर कह दी तब
वीर तिलक ने सच्ची वात:—

१ एकमन (concentrated)। २ जिसे दूसरी बात का ध्यान हो। ३ हाँ जनाब। † फिलहार्न साहब।

(७८)

"गुरो ! शरीर-सङ्गठन पर है
मेरा मनोयोग इस वर्ष,
इस के विना न हो पावेगा
मुझ से अब स्वाध्याय सहर्ष।
चिन्ता नहीं, मुझे कर पाऊँ
यदि न परीक्षा भी उत्तीर्ण,
हो न जाय पर युवा काल में
मेरा अङ्ग जरा[1] से जीर्ण।

(७९)

सत्य, सु-साहस से प्रसन्न हो
कहा प्रिन्सिपल ने भी 'ठीक'[2],
सत्य कथन मे तिलक सदा ही
रहते थे नितान्त निर्भीक।
यों विशुद्ध ज्ञानार्जन करके
लेकर जीवन का उद्देश,
था आजन्म तिलक ने पूजा
इष्ट-देव सम प्यारा देश।

१ बुढ़ापा। २ 'Alright.'

(८०)

लोकमान्य ! लोकाराधन-धन,[1]
अर्जन किया निधन[2] पर्यन्त,
कभी न लुब्ध कर सका तुझ को
शुभ सकाम[3] सेवा का अन्त[4] ।
था विद्यार्थि-दशा के तप का
दिव्य तेज तेरा भगवन्त !
गुंजा दिया गौरव-गर्जन से
त्यागी ! तू ने देश-दिगन्त[5] ।

---

१ लोकपूजा । २ मृत्यु । ३ इच्छासहित । ४ परिणाम । ५ आकाश ।

चतुर्थ सर्ग

(उत्सर्ग)

---

(१)

त्यागकर विद्यालय का द्वार,
परीक्षाओं का भार उतार,
देखता है विद्यार्थी-वर्ग,
चतुर्दिक् लोकाचार—विचार ।
इष्ट हो जिन को जीवन-भोग,
यही है उन का अर्जन-काल;
राष्ट्र-सेवा का स्वर्ण-सुयोग,
यही है स्वार्थ-विसर्जन-काल ।

(२)

संकृत पथ पाकर पयः-प्रवाह,
कठिनता से पाता प्रतिवन्ध;
स्रोत का रोके कोई रन्ध्र,
एक ही उसका प्रकृत प्रवन्ध।
इसी विध जनता का गति-मार्ग
लोक-परिपाटी की पा लीक,
वहाता विपुल समाज-स्रोत,
रोकता नेता ही निर्भीक।

(३)

तिलक ने देखा दृग-पट खोल,
समर्थों को भी सेवासक्त;
वकालत में वन कहीं स्वतन्त्र,
चूसते वन्धु-जनों का रक्त।
यही था स्वावलम्ब का मान,
यही था शिक्षा का अभिमान;
इसी में था स्वदेश-सम्मान,
इसी में गिनते थे वे ज्ञान।

१ एक वार। २ पानी का वहाव। ३ छेद। ४ रीति। ५ नौकरी में मग्न। ६ नाप।

(४)

हुई थी स्वाभिमान की भस्म,
द्रव्य की झुकी दृगों में धूल,
स्वार्थपरता[1] ने बन कर रस्म,
देखने दी न भयङ्कर भूल।
एक था और मार्ग अवशिष्ट[2],
दूर था उस से भोग-विलास,
कष्ट, कण्टक थे वहाँ अनेक,
देश-रिपुओं द्वारा था त्रास।

(५)

इधर थी ऐश्[3] जहाँ सरकार,
उधर थी उसकी दृढ़ दुतकार;
इधर था पद, पैदकों[4] का प्यार,
उधर थी तौक़ गले का हार।
न था उस पथ में कुछ अधिकार,
वित्त-वैभव की थी न बहार,
न वृद्धावस्था का आधार,
न न्याय कि करते जहाँ पुकार।

१ खुदग़रज़ी २ बाक़ी। ३ सहारा। ४ मैडिल; तमग़ा।

(६)

किन्तु क्या था उसमें ? थी 'शान्ति',
'राष्ट्र' की दिव्य-कीर्ति-मय कान्ति;
वहीं पर हट जाती थी भ्रान्ति,
देश-दुख-दग्ध हृदय की श्रान्ति।
वहीं थी पड़ी पतित की मुक्ति,
मनुजता के मुक्ता की शुक्ति[1],
वहीं थी उदित उद्धरण[2]-उक्ति[3],
युगान्तर[4]-आयोजन की युक्ति।

(७)

देश को करने ज्ञानापन्न[5],
वहाँ करना था आत्मोत्सर्ग[6];
उठाकर कर्म-क्षेत्र में क्रान्ति,
बनाना था वीरात्मा-वर्ग।
दिखाकर देश-भक्ति का रूप,
हटाना था वह मिथ्या मोह;
किया था जिसने भीरु स्वभाव,
दिया था दाहक देश-द्रोह।

१ सीप। २ उद्धार। ३ कथन, वाणी। ४ युग का बदलना।
५ शिक्षित। ६ आत्म-त्याग।

(८)

तिलक ने देखे कण्टक क्रूर,
मार्ग में बिछीं तीक्ष्ण तलवारें;
विलोके उन्नत[1]-नत[2]-भूखण्ड,
शिलाखण्डों के गहरे, गार।
सघन झाड़ों के भी झुण्ड,
कष्ट के कर्दम[3]-कलुपित कुण्ड,
तमीचर[4] धरे सुरों के मुण्ड,
लगाये तीनों-ताप-त्रिपुण्ड।

(९)

उछल कर कूदा वह नर-वीर,
बढ़ गया दूना उर उत्साह:
चला सीधा लेकर कर खड्ग,
छोड़ दी भोग-भवन की राह।
गिरे ज्यों गरुड़ चढे भगवान्,
विलोका जब गजेन्द्र पर ग्राह,
छुटाने क्षौणी[5] को चल पड़े,
कनक[6]कश्यप पर क्रुद्ध वराह[7]।

१ ऊँचे। २ नीचे। ३ कीचड़। ४ राक्षस। ५ पृथ्वी।
६ हिरण्यकश्यप। ७ वराह भगवान्।

(१०)

सजाकर अपना कर्म-विमान,
तिलक त्यों लिये तेज-तनुत्राण[1];
विघ्न-बाधा पर भ्रुति स्रों तान,
छोड़ने चले सिद्धिमुख बाण।
दिया शिर प्रलोभनों का काट,
दृढ़-व्रत जन-सेवा का धार;
बनाया भारत भर परिवार,
राष्ट्र-रक्षा रख लक्ष्य उदार।

(११)

यदपि था तजा न परिजन-प्रेम,
कभी भी हुए न उस में लिप्त;
देश-पूजा ही था दृढ़ नेम,
उसी की धुन में थे विक्षिप्त[2]।
† विष्णु शास्त्री के नव्य निबन्ध,
युवक-हृत्पट पर करुणा-मूर्त—
स्वदेश-स्थिति का दारुण चित्र,
लिख चुके थे परता[3] से पूर्व।

१ कवच। २ पागल। † स्व० विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने ही सब से पहले महाराष्ट्र को देश-दशा का ज्ञान कराया था। ३ विदेशीयता।

(१२)

"बाह्य उपकरणों[1] से सम्पन्न,
विदेशी शासन के सुविधान;
कराके कर्म-शक्ति का नाश,
भर रहे हैं योरप के यान[2]।
न नैतिक बल का है कुछ बोध,
पङ्ग है प्रतिभा के सब अङ्ग;
बढ़े हैं 'जी हुजूर,' 'जो हुक्म',
प्रभो ! पलटा है कैसा रङ्ग।"

(१३)

यही था उन लेखों का सार,
इसी से सेवा-बन्धन तोड़;
हुए थे आन्दोलन मे लग्न,
स्वयं † शास्त्री पद-ममता छोड़।
तिलक ¶ *आगरकर* का सङ्कल्प,
हुआ था कालिज में निर्णीत[3];
वहाँ से छुटते ही वे वीर,
विष्णुशास्त्री से मिले सप्रीत।

१ सामग्रियाँ। २ जहाज़। † विष्णुशास्त्री ¶ श्री० गोपालराव आगरकर एम. ए. लोकमान्य के मित्र थे। ३ निश्चित।

(१४)

"कर्मवीरों की करने सृष्टि,
लेखनी, रसना[1] का उपयोग;
करेंगे आजीवन हम लोग,
हरेंगे जन्म-भूमि का रोग।"
इसी निर्णय पर हो कटिबद्ध,
राष्ट्र-शिक्षा का मूलाधार,
किया संस्थापित राष्ट्र[2]-स्कूल,
हुआ आरम्भ स्वतन्त्र प्रचार।

(१५)

मिला पर[3]-शिक्षा में वह छिद्र,
वहा था जिस से उर का रक्त;
इसी के द्वारा अन्तस्तेज
हुआ था भारत-तनु से त्यक्त।
इसी में जीवन का अधिकाश,
विताते थे रट रटकर छात्र;
इसी ने पर-भाषा-पद भक्त,
किये थे प्रकटित पदवी[4]-पात्र।

१ जिह्वा। २ न्यू इंग्लिश स्कूल (१ जनवरी, १८८०)। ३ विदेशी शिक्षा। ४ खिताब।

(१६)

विदेशी शिक्षा थी विष-बेल,
स्वार्थ-सुमनों से सजी, भड़ैत;
हुए थे भारतीय निर्जीव,
इसी करिणी[1] के खाये कैत।
दरोग़ा, डिपुटी, डाक्टर, क्लर्क,
इसी से थे उत्पन्न डकैत;
देश के द्रव्य-हरण के हेतु,
वकीलों के दल लण्ठ-लठैत[2]।

(१७)

जगाने को जातीय विचार,
राष्ट्र-संस्था का सुन्दर कल्प[3];
समुन्नति-साधन था उस काल,
समझ मे जनता की अत्यल्प[4]।
हृदय में बसा हुआ पद-प्रेम,
राष्ट्र-शिक्षा का शुभ परिणाम
देखने देता ही था कहाँ,
शुभङ्कर स्वतन्त्रता का धाम ?

१ हथिनी (हथिनी कैतको खाकर बिना ऊपरी रूप बिगाडे भीतरसे खोखला कर देती है)। २ लण्ठोंके रक्षक। ३ विचार। ४ बहुत थोड़ा।

(१८)

'राष्ट्र विद्यालय मे जा कौन,
करे अपना मस्तिष्क-विकास?'
हो गया था अधीन हो हन्त!
हमारा ऐसा भीषण ह्रास!
मिले थे बहुधा बुद्धू¹ छात्र,
खिलाड़ी, उत्पाती, उद्दाम²;
देश की होनहार सन्तान,
दूर से करती रही प्रणाम।

(१९)

देख यह दुरवस्था³ का दृश्य,
हुआ सञ्चालक-वर्ग हताश;
तमावृत⁴ हो बढ़ता था किन्तु,
तिलक का अन्तस्तेज-प्रकाश।
"निकाले तलछट में से रत्न,
बनावे बिगड़े घट का वेश;
सफल हो यों यदि राष्ट्र-प्रयत्न,
तभी कुछ जानेगा यह देश।"

१ मूर्ख। २ निरंकुश। ३ बुरी दशा। ४ अन्धकार से ढका हुआ।

(२०)

तिलक के ये आश्वासन-वाक्य,
बढ़ाये रहते थे उत्साह;
शिथिल अङ्गों को संज्ञापन्न[1],
यथा करता है तड़ित्प्रवाह[2]।
त्याग[3] पर थी संस्था[4] की नींव,
सदस्य न रखते थे कुछ चाह;
तीस मुद्रा मासिक पर उन्हें,
बीस संवत् करना निर्वाह।

(२१)

तिलक, शास्त्री[5] ने पहले वर्ष,
विना वेतन ही करके काम,
परिश्रम कर करके अभिराम,
बढ़ाया विद्यालय का नाम।
"तीस रुपये लेकर तो मित्र!
कफ़न के कपड़े को भी दाम;
बचेंगे नहीं मृत्यु पर्य्यन्त,"
किया साथी ने तर्क ललाम।

१ होश मे। २ बिजली की धारा। ३ बलिदान (Secrifice)
४ स्कूल (Institution)। विष्णु शास्त्री।

(२२)

"सखे ! इस की चिन्ता किस हेतु ?"
तिलक सस्मित[1] बोले निष्काम।
"कभी ऐसा मरणोत्तर-मोह[2],
छुटाता कर्मिष्टों से काम ?
मान लो, माने हमें न लोक,
किन्तु सेवा में हो तनु-त्याग,
दैन्य-दुख-दग्ध देह कर सके,
प्रकट कुछ भी स्वदेश-अनुराग।

(२३)

कफ़न भी देगा कोई डाल,
न सही लेकर आदर-भाव,
जला देता मुर्दे की लाश,
स्वास्थ्य हित यही समाज-स्वभाव।
दया इतनी भी दिखा सके न,
हमारे हित दैवात् समाज,
करेगी गृध्रादिक[3]-दल भेज,
प्रकृति[4] तो तो भी अपना काज।"

१ हँसते हुए। २ मरने की पीछे का विचार। ३ गीध इत्यादिक।
४ कुदरत (Nature)।

(२४)

जहाँ हो सेवा का यह मर्म,
वहाँ मिलता है ध्रुव साफल्य;
विफलता लेती वहीं विराम,
चित्त में बसे जहाँ चापल्य[1]।
पिघलते पर्वत उसको देख,
करे जो ऐकायन[2] हो कृत्य;
उसी ऊर्जस्वी[3] को अवलोक,
विभीषण[4] बाधा बनती भृत्य[5]।

(२५)

व्यवस्था विद्यालय की भव्य,
† *नामजोशी* का पाकर साथ,
तिलक ने की जब स्वार्थ विसार,
बटाने लगा लोक भी हाथ।
आपटे, गोले से विद्वान्,
केलकर से नाटक-निष्णात[6];
चतुर शिक्षक दल का पा योग,
हुई शाला सब विध सुख्यात।

१ चञ्चलता। २ एकाग्रचित्त। ३ तेजधारी (Energetic)। ४ भयकर। ५ दास। † श्री० मा ब० नामजोशी ६ चतुर।

(२६)

† लेखनी ललकी ले उत्साह,

चलाने अब जनता में पेत्र,

अनूठे आत्म-अभयता-भाव,

भूरि भरने के हित सर्वत्र।

केसरी के गर्जन के साथ,

मराठा का दृढ़ मुष्टि-प्रहार;

कुम्भकर्णी निद्रा को भङ्ग

लगा करने, कर-निकर प्रसार।

(२७)

मर्म-मय आलोचन के साथ,

केसरी के सुलेख गम्भीर;

दिखाने लगे प्रचण्ड प्रभाव,

बहाने लगे विशुद्ध समीर।

'कौन थे क्या हम हैं हो गये?'

लगे अब करने सभी विचार;

मातृभाषा में सुगम, सुबोध,

ज्ञान का होने लगा प्रचार।

† १८८० ई० । १ अनुपम । २ समूह । ३ समालोचना (Criticism)।

(२८)

दुराचारी-दल की निर्भीक,
† तिलक थे खूब खोलते पोल।
दिखाते ¶ आगरकर थे लीक,
न्याय को तर्क-तुला पर तोल।
लगाकर दुष्ट-दिलों पर चोट,
फाड़ते थे ढोंगों का ढोल;
दिखा निष्ठुर-शासन के खोट,
किये थे आसन डाँवाडोल।

(२९)

बनी थी भय पर जिनकी शान,
खटकता था उन को यह ढङ्ग;
ज्ञान पाकर जनता अज्ञान,
दिखाती थी उन्नति का रङ्ग।
तहलके में थे देशी राज्य,
दहलता सदा सत्य से दोष;
देख यों जागृति का साम्राज्य,
तिलक पर किया उन्हों ने रोष।

† 'मराठा' का सम्पादन करते थे। ¶ केसरी के सम्पादक थे।

(३०)

कूदकर रङ्गभूमि में मल्ल,
युद्ध हित देता जब ललकार;
भीम भी भिड़े न हटता कहीं,
सहन करता है वज्र-प्रहार।
जिसे था दिया निमन्त्रण आप,
देखकर आती वही विपत्ति;
बाल के भव्य भाल पर थी न,
बाल भर की बल[1] की उत्पत्ति।

(३१)

कारबारी कोल्हापुर मध्य,
† उस समय बर्वे माधव राव;
खे रहे थे ले उलटा डाँड़,
छत्रपति-प्रजा-पक्ष की नाव।
'केसरी' केवट की कटु सीख,
'मराठा' का मल्लाही मंत्र;
निरङ्कुशता के अङ्कुश रूप,
सुहाते थे न उन्हे गुन यंत्र।

१ सिकुड़न; चिन्ता। † श्री माधवराव बर्वे कोल्हापुर के कारभारी थे।

(३२)

चलाकर मानहानि-अभियोग,
किया वर्वे ने उन पर वार,
सह सके सत्ताधीश[1] सदोष,
सत्य-वक्ता की कब धिक्कार ?
तिलक ने लिखा न था वह लेख,
अतः वे हो सकते थे मुक्त,
किन्तु औरों पर रख दायित्व[2],
स्वयं बचना था उन्हें अयुक्त।

(३३)

देख सुहृदों पर सङ्कट-वार,
स्वयं बन जाते थे वे ढाल;
शत्रु का सहने को आघात,
उमड़ उठता था वक्ष विशाल।
आपदाओं के स्वागत हेतु,
बढ़े वे सदा ठोककर ताल,
जयाजय[3]-लाभालाभ[4]-विचार,
न लाते थे मन मे उस काल।

१ अधिकारी। २ ज़िम्मेदारी। ३ हार जीत। ४ लाभ हानि।

(३४)

लिया अपने शिर पर जो भार,
उसी मे किया भगीरथ[1]-यत्न;
फलाफल माना ईशाधीन,
भाग्य से मिले सीप वा रत्न।
तिलक ने देख महा अन्धेर,
लिया था जिन का पीड़ित-पक्ष;
दे सके वे न सत्य भी साक्ष्य[2],
कारबारी की शक्ति-समक्ष।

(३५)

बुज़दिलों द्वारा वञ्चित बाल,
दण्ड्य ही थे यों निस्सन्देह;
न लाया नेता पर कब कष्ट,
हीन-हृदयों का त्राण-स्नेह।
एक सौ एक दिवस का दण्ड
भोगने को वे † दोनों मित्र;
शान्त, सस्मित[3], हर्षित हो चले,
जेल को करने परम पवित्र।

१ राजा भगीरथ के समान कठोर प्रयत्न। २ गवाही। † तिलक और आगरकर। ३ हँसते हुए।

(३६)

जायँ जो जन-सेवा-हित जेल,
धन्य है उनका जीवन-योग;
पतित, पामर, जड़ जीव जघन्य,
भोगते जनै-पीड़न से भोग।
तिलक—आगरकर—कारावास,
प्रतिष्ठा-वर्धन का था हेतु;
कर सका क्या विधु वैभव-ह्रास,
चलाकर चाल कुचाली केतु ?

(३७)

भोगकर दण्ड दृढ़-व्रत वीर,
हुए फिर सेवा में संलग्न;
पद्म-मुख में कर निशा-निवास
न होती भृङ्ग-भावना-भग्न।
राष्ट्र-शिक्षा का सफल प्रचार,
दिखाने लगा मधुर परिणाम;
चार वर्षों में चारों ओर,
विदित था विद्यालय का नाम।

१ प्रजा का कष्ट। २ चन्द्रमा। ३ केतु नाम का राक्षस जो चन्द्रमा को ग्रस लेता है। ४ कमल। ५ भौंरा।

(३८)

नामजोशी को लेकर तिलक,
हुए चन्दा करने कटिबद्ध,
देख उन्नति, करने सहयोग,
सभी जनता थी अब सन्नद्ध।
इधर शिक्षा का शुभ सङ्कल्प,
उधर दोनों का यत्न अजस्र,
फ़ण्ड में ले आया अविलम्ब,
मुद्रिका मञ्जु पचास सहस्र।

(३९)

खोलकर † दक्षिण-शिक्षा-समिति,
राष्ट्र-शिक्षा की केन्द्रीभूत,
वित्त के सदुपयोग से किये,
अनेकों प्रज्ञा-पुत्र प्रसूत।
पड़ी पूना में परम प्रसिद्ध,
फ़र्गुसन कालिज की बुनियाद;
जहाँ जन—सेवा का सद्भाव,
सभी पाते थे पुण्य-प्रसाद।

१ लगातार। २ शीघ्र। † Decon Education Society. ३ पण्डित।

(४०)

दान-दाताओं के प्रीत्यर्थ[1],
गवर्नर-गौरव-व्यञ्जक नाम[2],
लोक-रुचि के रक्खा अनुकूल,
त्याग भारत के लाल ललाम।
अधीनों में आत्मीय विचार,
तथा पूर्वज-पूजा का बीज,
शेष हों तो क्या वे पशुराज,
गिरें पर-पद पर पुलक, पसीज?

(४१)

भोज, विक्रम की भारत-भूमि,
शिवाजी का वह जन्मस्थान;
राष्ट्र-संस्था का रखने नाम,
विदेशी वीरों को दे मान!
भला है, होना यदपि कृतज्ञ,
तदपि पूर्वाभिमान का तत्व—
न उस से हो विनष्ट, विभ्रष्ट,
अहंता[3] का इतिहास-महत्व।

१ प्रसन्न करने के लिए। २ फर्गुसन साहब। ३ अपनापन।

(४२)

लोकशाही की रक्खें लाज,
किन्तु वह जायँ न उसके साथ;
बढ़े जब उस का वृषे-बल-वेग,
हाथ में हो नेता के नाथ।
जहाँ गौराङ्ग-गुणों पर मुग्ध,
उन्हें मानें हम श्रद्धा-श्रेय,
वहाँ हो पूर्व-पूज्यता-भाव,
राष्ट्र-कर्मों मे हमे विधेयँ।

(४३)

हुआ जब संस्था का सङ्गठन,
नियम-रचना की जड़ था 'त्याग';
एकमत से था स्वीकृत हुआ,
¶ तिलक द्वारा दर्शित अनुराग।
हुए † कालान्तर में दो पक्ष,
प्रलोभन में जब फँसे सदस्य;
'कहाँ तक पाकर परिमित आर्य,
भरें जीवन,' था यही रहस्य।

१ बैल। २ कर्तव्य (duty)। ¶ आरम्भिक नियम लोकमान्य
हीं ने बनाये थे। † १८८७ ई०। ३ नियत। ४ आमदनी।

(४४)

ऐक[1] के मत में कर कर्तव्य,
न थी द्रव्यार्जन में कुछ हानि;
दूसरे[2] को दमड़ी भी लाभ,
प्राप्त करना था केवल ग्लानि।
'आयु के क्षण क्षण का उद्योग,
सभी हो संस्था के लाभार्थ,'
तिलक का पक्ष यही था, 'हो न
त्याग में तो तिलभर भी स्वार्थ।'

(४५)

अन्त में जब यह मत[3]-वैभिन्य,
दृष्टि मे आने लगा असाध्य,
तिलक ने दिया विसर्जन[4]-पत्र,
न इच्छा रहते भी, हो बाध्य।
सविस्तर[5] दिखलाकर सब हेतु,
बताया सिद्धान्तों का त्याग,
नियम की अवहेला[6] अवलोक,
अवश था लेना उन्हें विराग।

१ आगरकर। २ तिलक। ३ मतभेद। ४ इस्तैफ़ा। ५ विस्तार-पूर्वक। ६ उपेक्षा; ढील।

(४६)

छिड़ा जब निपटारे का प्रश्न,
एक को बहुमत हुआ शरण्य[1],
किन्तु सिद्धान्तों के प्रतिकूल,
तिलक मत में था वही नगण्य[2]।
किसी भी संस्था का सङ्गठन,
मिटा दे यदि संस्थापन-तत्व,
रहेगा क्या फिर उस का रूप,
सधेगा कैसे मूल-महत्व ?

(४७)

अटल-तत्वों[3] में हस्तक्षेप,
न अनुयायी दल का अधिकार,
प्राप्त करने साधन-सौलभ्य[4],
उचित होता बहुपक्ष-विचार[5]।
आदि के सिद्धान्तों के साथ,
ज़रा भी हो जिन को मतभेद,
श्रेय है, संस्था से सम्बन्ध,
स्वयं ही कर लें वे विच्छेद।

१ शरण लेने योग्य, सहारा। २ न गिनने योग्य। ३ Articles of faith. ४ सुलभता, सहूलियत। ५ बहुमत (majority)।

(४८)

तिलक के सम्मुख था सिद्धान्त:
त्याग, सर्वस्व त्याग, बलिदान ;
तर्क था उन का यही अकाट्य,[1]
इसी का था उन को अभिमान।
किन्तु 'कहने, करने' का भेद,
सभी के मन से हो यदि दूर ;
दृष्टि में पड़े न करता कार्य,
सृष्टि में कोई कलुषित, क्रूर।

(४९)

भूलकर अपना भव्य भविष्य,
तरुण-यौवन के ग्यारह वर्ष ;
किये थे जिस के लिए व्यतीत,
देखकर उस तरु का अपकर्ष।[2]
रखा था किस साहस से धैर्य,
तिलक त्यागी! तुमने किस भाँति ?
रहे क्यों चातक-चित्त-स्थैर्य,[3]
रिक्त[4] हो जहाँ सलिल से स्वाँति ?

१ जो कट न सके। २ पतन। ३ स्थिरता। ४ खाली।

(५०)

ध्यान में ला वह वज्र-वियोग,
कल्पना के उर उठती पीर ।
सहन की क्षमता देखी गई,
तुम्हारी सी तुम में ही धीर ।
देखते उज्ज्वल आगत काल,
भूल जाते जो हुआ अतीत ;
हुआ कर्माङ्गया परम प्रशस्त,
सत्य-सन्धों को सदा प्रतीत ।

---

१ भविष्य । २ भूत । ३ विस्तृत । ४ सत्यप्रतिज्ञों ।

पञ्चम सर्ग

(सेवा)

१—भरे हैं जिन में भाव उदार,
उन्हें वसुधा[1] भर है परिवार।
लोक की निन्दास्तुति का तार,
उठाता उन में नहीं विकार।
चतुर्दिक् सेवा का शुभ क्षेत्र,
देखते उनके निर्मल नेत्र।

२—जिन्हे बल देते हैं विश्वेश,
प्रेम का करुणा-कृत वर वेश,
मिटाते जिन से जनता-क्लेश,
उठाते जिन के द्वारा देश।
उन्हें देते आयुध[2] अनुकूल—
विपन्नावस्था[3]-ताप-त्रिशूल।

१ पृथ्वी। २ शस्त्र। ३ दीन दशा।

३—तिलक का शिक्षा-प्रेम पवित्र,
राष्ट्र को देता दिव्य चरित्र।
दिखाता दुरवस्था[1] का चित्र,
देश की विधि-वञ्चना[2] विचित्र।
किन्तु लेकर उस का अवलम्ब,
कार्य में होता अधिक विलम्ब।

४—भला सदियों का सोया दास,
भोगता भारत भागी त्रास,
भुलाकर अटल आत्म-विश्वास,
सहज जाता जागृति के पास!
उसे झकझोर उठाना था,
स्वत्व हित शोर मचाना था।

५—राष्ट्र के विना हुए स्वाधीन,
पङ्गु हैं शिक्षा के पद दीन,
राजनैतिक अधिकार-विहीन,
पनपती प्रजा कहीं न, कभीन,
पदवियों पाकर क्या परतंत्र,
पा सके कहीं स्वशासन-मन्त्र।

१ बुरी दशा। २ ठगी, छीनना।

६—स्वत्व-रक्षा का मूल स्वराज,
रखेगा भरत-भूमि की लाज।
वही मेटेगा पाप-समाज,
डालकर आत्म-ग्लानि की गाज'
तिलक ने देखा यों प्रत्यक्ष,
जड़ा जनता में जीवन-लक्ष।

७—‡ समिति से छोड़ा जब सम्बन्ध,
किया पत्रों[1] का पूर्ण प्रबन्ध।
सुदृढ़ तिलकागरकर-सुस्कन्ध[2],
राजनैतिक रथ थे निर्बन्ध[3]।
किन्तु था सामाजिक मतभेद,
हो गया इस से दल-विच्छेद।

८—'केसरी' करके बन्धन भङ्ग,
धर्म का बदल रहा था रङ्ग।
"हटाकर दूर पुराना ढङ्ग,
सङ्गठित हो समाज का अङ्ग।"
यही थी आगरकर की नीति,
भाह्य थी जिस में शासन-भीति[4]।

‡ दक्षिण-शिक्षा-समिति। १ केसरी, मराठा। २ सुन्दर कन्धे। ३ बेरोक। ४ सरकारी भय।

९–उन्हें था यह भी अङ्गीकार,
कि हो इस में सहाय सरकार।
न हो, तो इस का पुण्य-प्रचार,
करें ले क़ानूनी आधार।
किसी विध हो सगठित समाज,
जिसे कल करना है हो आज।

१०–'मराठा' में वह तिलकोद्गार,
न करता था इस को स्वीकार।
स्वत्व-संयुत, सङ्कुचित सुधार,
धर्म–मर्यादा–मयी पुकार,
मचाकर वह निर्भय, निर्लेप,
रोकता था पर-हस्त-क्षेप।

११–धर्म की श्रद्धा देख घटी,
तिलक आगरकर की न पटी।
हटी तब नूतन-रङ्ग-नटी,
सनातन शैली रही सटी।
† 'सुधारक' आगरकर का पत्र,
नया निकला पहुँचा सर्वत्र।

१ दूसरों की दख़लन्दाज़ी। २ मिली हुई। † १८८७ ई०।

१२—समिति ने छोड़ा पत्र-प्रभुत्व,
† हुआ तब तिलकादि का गुरुत्व।
पत्र में था न किन्तु कुछ तत्व,
प्रेस का था बढ़ रहा महत्व।
लदा था पत्रों पर ऋण-भार,
प्रेस देता था पैसे चार।

१३—भँवर में थी साझे की नाव,
किसे घाटे का होगा चाव?
लगा जिस के अधीनता—घाव,
सहेगा वही ताप का ताव।
प्रेस, पत्रों का बटवारा,
हुआ दोनों को कर न्यारा।

१४—ऋण-सहित पत्रोंवाला भाग,
तिलक ने लिया सहित अनुराग।
आय की भारी आशा त्याग,
पूर्ण करना था जीवन-याग[२]।
शीश पर ले ऋण सात सहस्र,
लगे श्रम करने अथक, अजस्र[३]।

† तिलक, प्रो० केलकर, हरिनारायण गोखले। १ पत्र और प्रेस।
२ यज्ञ। ३ लगातार।

१५—जुटा जिस भाँति कर्म-योगी,
दीन-दुख-दग्ध राष्ट्र-रोगी।
भाव-भाण्डार भक्ति-भोगी,
अतुल ऊर्जस्वी[1] उद्योगी।
देखकर वन्दनीय वह चित्र,
न होंगे किस के नेत्र पवित्र?

१६—भारती-भूषण-भाल विशाल,
लग्न नय-नागर का तत्काल,
उगलता था वह जीवन-ज्वाल,
कि उठता भाव-भूमि-भूचाल।
लोक-विजयी के लोचन लोल,
प्रभा का देते थे पट खोल।

१७—सरलतम भूषा, विरले[3] विचार,
तलस्पर्शी[4] उत्कट उद्गार,
विमलतम विद्या-व्यसन-विहार,
पत्र-पुस्तक-उपकरण[5] निहार
निरन्तर नखशिख से निष्काम,
हृदय करता था दण्ड-प्रणाम।

१ शक्तिशाली (Energetic)। २ वाणी। ३ अनोखे (Rare)। ४ हृदय को छूनेवाले। ५ सामान।

१८—वीर का वह दक्षिण भुज-दण्ड,
लेखनी लेकर परम प्रचण्ड—
मुक्ति का मेरुदण्ड दुर्दण्ड—
तोड़ता था अज्ञान-अखण्ड ।
शक्तिमत्तों का दल कर दर्प,
छोड़ता था छाती पर सर्प ।

१९—'केसरी की भाषा का ओज,
तर्कयुत तत्व विषय की खोज ।
न्याय्य, निस्पृह भावों के भोज,
स्वत्व, समता के शुभ्र सरोज ।'
नयन-मन में उपजाते हर्ष,
पत्र को देते थे उत्कर्ष ।

२०—तपोधन तिलक-कल्पना-जन्य,
सङ्गठित हुए[1] अनुक्रम अन्य,
जलाकर जडता-जाल जघन्य[2],
जगाते जीवन-ज्योति अनन्य,
मनोमन्दिर मे रख मति-दीप,
वने पैरता[3]-तम-पुञ्ज-प्रतीप[4] ।

१ कार्य (Organizations) । २ नीच । ३ पराधीनता । ४ विरुद्ध ।

२१–धर्म का था उन में आभास,
पूर्वजों का प्रभुत्व-इतिहास।
भ्रान्त, भ्रष्टों का भीषण ह्रास,
धीर-वीरों का कर्म-विकास।
उठाते थे वे जात्यभिमान,
गिराते थे वे नाश-निशान।

२२–दिव्य देवाराधन का ढङ्ग,
§ गजानन-गौरव का नव रङ्ग,
राष्ट्र-भावों का भावुक भृङ्ग ?
¶ शिवाजी-जन्मोत्सव जय-शृङ्ग।
वीर-पूजा के दो अभिषेक,
उठाते थे ऊर्जित उद्रेक।

२३–अतुल आत्मीय भाव का कोष,
रुचिर राष्ट्रीय भाव का गोष,
श्रेष्ठ स्वाधीन भाव का घोष,
प्रणों के पीने भाव का तोष,
किसानों की कुटियों तक व्याप,
रहे थे दीपक-राग अलाप।

§ गणपति उत्सव (१८९३)। ¶ १८९४ ई०। १ सुन्दर; उच्च २ भाव; उदात्त। ३ पुष्ट।

२४—त्यागकर मूषक-यान गणेश,
विराजे, धर वीरोचित वेश।
† 'केसरी' ने फैलाकर केश,
उन्हें ले दिया धर्म-उपदेश।
दुष्ट-गण का करने संहार,
हुए यों गणपति सिंह-सवार।

२५—कहीं वे करके उन्नत शुण्ड,
कुचलते देखे दानव-झुण्ड;
कहीं धन्वा[2] धर तमका तुण्ड,
उड़ाते दुर्दान्तों के मुण्ड।
धर्म की मानमयी यह मूर्ति,
न देती किस को आत्मस्फूर्ति ?

२६—राष्ट्र के निर्माता शिवराज,
शिवोत्सव में सर्वत्र विराज।
बचाते देखे भारत-लाज,
गिराते गर्वित रिपु पर गाज।
शत्रु सेनाओं का मद लूट,
मिटाते महाराष्ट्र की फूट।

† 'केसरी' कार्यालय में गणेशजी की मूर्ति सिंहवाहनी है। १ सूँड़। २ धनुष।

२७—कहीं † कपटी का उदर विदीर्ण,
कहीं शूरों की सूरत जीर्ण,
कहीं * सम्राट-शौर्य कर शीर्ण,
लखे करते पर-पक्ष प्रकीर्ण।
त्रस्त के त्राता, त्रासक-त्रास,
वही देखे ‡ समर्थ-गुरु-दास।

२८—म्लेच्छ-मद-मर्दक, रक्षण-शक्त,
नहीं थे कभी काम-अनुरक्त।
मुसलमानों से धर्म-विभक्त,
राष्ट्र-पथ से न किन्तु परित्यक्त।
देश में नवजीवन सञ्चार,
आत्म-निर्णय का किया प्रचार।

२९—बनी लोक-प्रिय प्रथा विशाल,
जगाया जिस ने जा बङ्गाल।
¶ दिया ठनका शिरोल का भाल,
व्याज में देखा जिस ने काल।
उन्हीं से उपजी जान अशान्ति,
रोप से भभकी उस की भ्रान्ति।

† अफ़ज़लखाँ। * औरंगज़ेब। ‡ श्री समर्थ गुरु रामदास शिवाजी के गुरु थे। § मज़हब। ¶ तिलकका कट्टर शत्रु सर वेलेंटाइन शिरोल।

३०—उसे उत्थित भारत का वेश
देखकर हुआ आन्तरिक क्लेश।
केसरी के लख विखरे केश,
समझकर उपद्रवी उद्देश
‡ पुस्तकाकार प्रकट कर रोष,
तिलक-शिर मढ़ा घोरतम दोष।

३१—किन्तु उन का साहस, अभिमान,
स्वार्थ का त्याग, आत्म-बलिदान,
विपक्षी बातों पर दे ध्यान,
न गिनता था अपना अपमान।
† कौंसिल मे करते थे व्यक्त,
निरन्तर वे सिद्धान्त सशक्त।

३२—नीति की मर्यादा को पाल,
तिलक की आलोचना कराल,
तीव्र तर्कों की लेकर ढाल,
न चलने देती थी कुछ चाल।
युक्तियाँ स-प्रमाण स्वच्छन्द,
दम्भ का करती थीं मुख बन्द।

‡ 'इण्डियन अनरेस्ट' मे तिलक को राजद्रोह क्रांति का पिता बताया है। † १८९९ ई० मे तिलक बम्बई लैजिसलेटिव कौन्सिल के मेम्बर थे।

३३—इसी अवसर पर अन्न-अभाव,
दिखाता था दुष्काल-प्रभाव।
‡ प्लेग का सहसा प्रादुर्भाव,
लगा पूना में घातक घाव।
देखकर निपट नया यह रोग,
उपस्थित हुआ उपद्रव-योग।

३४—प्लेग-कमिटी थी हुई नियुक्त,
विपद्ग्रस्तों को करने मुक्त,
स्वच्छता के कर यत्न प्रयुक्त,
धुलाये घर जिस ने बल-युक्त।
विवशता को गिन अपरा प्लेग,
त्रस्त जनता में था उद्वेग।

३५—कहीं अबलों पर अत्याचार,
घरों में गोरों का उपचार,
विचारों को दे उग्र उभार,
बढ़ाने लगा विशेष विकार।
तीव्र थी यद्यपि यह अफ़वाह,
नहीं था उस पर साक्ष्य-सनाह।

‡ १८९७ ई० पूना में पहले पहले प्लेग फैला था। १ मजबूरी (Compulsion)। २ दूसरी। ३ गवाही का कवच।

३६—*गोखले से नीतिज्ञ सुदक्ष,*
चले जब लेकर इस का पक्ष।
बात को रख सरकार-समक्ष,
पा सके साक्ष्य न वे प्रत्यक्ष।
विवश वापस लेकर थे मौन,
साक्ष्य के बिना न्याय दे कौन ?

३७—नियमरचने ! तू जीती रहे !
कि तेरी गोद न रीती रहे !
मूल भी तेरी तीती रहे !
आह के आँसू पीती रहे !
न्याय का गला घुटे घुट जाय !
गवाही का न लाभ लुट जाय !

३८—उक्त कमिटी के उग्र उपाय,
पा सके लोगों से न सहाय।
उठी थी 'त्राहि, त्राहि' की हाय,
नहीं था सह्य ताप-समवाय।
नीतिमत्ता थी इतनी न्यून,
एक ने किया † रैण्ड का खून।

समूह। † मि० रैण्ड प्लेग-कमिटी के सभापति थे।
(जून २६, १८९७ ई०)।

३९—भागते थे जब लोग भयालु,
तिलक का दिल था द्रवित दयालु।
न थे वे सङ्कट में शङ्कालु,
उन्हें थे रक्षक राम कृपालु।
रोगग्रस्तों की शुश्रूषा,
सदा थी सेवा-पथ-पूषा।

४०—तिलक के प्राणों की प्रतिमूर्ति,
मनोहर मुद्रा की मति-मूर्ति,
अलक्षित आशाओं की पूर्ति,
वंश-वेली की सुफल-स्फूर्ति,
ज्येष्ठ सुत को देकर बलिदान,
प्लेग का किस विध था आह्वान:-

४१—"हो रहा होली में नरमेध,
काल-शर रहे सभी को वेध।
यही है इस प्रपञ्च का भेद,
मुझे ही हो क्यों सुत का खेद?
दे दिया मैं ने भी निज भाग,
विधे! पूरा हो तेरा याग!"

१ सेवा। २ सूर्य। ३ दूसरी प्रतिमा। ४ चेहरा। ५ प्लेग।

४२—धन्य हो ! निर्विकार भगवान ,
तुम्हीं सा तिलक तुम्हारा ज्ञान !
नित्य जीवन में गीता-ध्यान !
महामुनियों को कठिन महान !
आ रहे सुत को देकर दाह,
बह रहा जनता-प्रेम-प्रवाह ।

४३—न कुछ भी सुत-वियोग से खिन्न,
हुए मानो माया से भिन्न।
मोह की छाया को कर छिन्न,
कर चुके भौतिक[1] भ्रान्ति विभिन्न।
लिख रहे बैठे अग्रिम[2] लेख !
मारते तुम ममता पर मेख !

४४—पड़ा जब दक्षिण में दुष्काल[3],
किसानों का था ढीला हाल।
न उपजा अन्न वहाँ उस काल,
खिंची जाती थी तन की खाल।
'केसरी' कहता था कि किसान,
बिना गुञ्जायश दें न लगान[4] ।

१ सांसारिक। २ 'केसरी' का सम्पादकीय लेख। ३ (१८९७ ई०)
४ भूमिकर।

४५—आज यह असहयोग-सिद्धान्त,
विदित था तुम्हें तभी निर्भ्रान्त,
जब कि थे सारे नेता शान्त,
पड़े थे पीछे पिछड़े प्रान्त।
तुम्हारा निर्मित राष्ट्रिय क्षेत्र,
चकित करता अब जग के नेत्र।

४६—† जयन्त्युत्सव का देख प्रचार,
रुष्ट थी मन ही मन सरकार।
उसे जागृति के मूलाधार
मनुज पर ही था इष्ट प्रहार।
प्रजा में होना आत्म-ज्ञान,
शान-पथ में था विघ्न महान।

४७—तिलक का वाग्मि-कथन स्पष्ट,
हुआ अधिकारी दल को कष्ट।
आँख का काँटा किस विध नष्ट
करें? वे चिन्तित थे मति-भ्रष्ट।
§ रैंड-दल में पाकर नव क्षेत्र,
डालने लगे तिलक पर नेत्र।

† शिवाजी जयन्ती। § प्लेग कमिटी के सभापति मि॰ रैण्ड।

४८—तिलक के वध-सम्बन्धी लेख,
राज्य ने द्रोह-दृष्टि से देख।
उन्हीं मे लखी उपद्रव-रेख,
विचारा कुछ भी मीन न मेख।
लगाया द्रोहात्मक अभियोग,
दबाने का था यों उद्योग।

४९—§ नौ जनों की जुड़कर ज्यूरी,
सूरतें छः जिस में भूरी।
न ज्ञाता भाषा की पूरी,
नापती थी नय¹ की दूरी।
मराठी के भावों की शक्ति,
समझते क्या विदेश के व्यक्ति?

५०—"जिन्हें भाषा पर हो अधिकार,
करें वे ही अभियोग-विचार।
कि जिस से अर्थ-अनर्थ-विकार,
न्याय पर चला सके न कुठार।"
तिलक ने यह ओपत्ति² उदार,
उठाई, किन्तु न थी स्वीकार।

§ (६ यूरोपियन + ३ हिन्दुस्तानी)। १ नीति २ ऐतराज (Objection)।

५१—मूल का पढ़ केवल अनुवाद,
सहज था होना प्रकट प्रमाद।
व्यर्थ था फिर न्यायार्थ विवाद,
तिलक ने किया न अत: विवाद।
गिना छः गोरों ने दोषी,
अन्य तीनों ने निर्दोषी।

५२—नीति-धारा का नूतन अर्थ,
'स्ट्रेची' जज ने कर अव्यर्थ।
दण्ड हित उसको किया समर्थ,
बना पीछे से नियम तदर्थ।
अठारह महिने का दे दण्ड,
दिखा दी अपनी शक्ति प्रचण्ड।

५३—व्यर्थ था करना कहीं अपील,
सज़ा में हुई न कुछ भी ढील।
यदपि था दिया शेष को कील,
कठिन था हरना उस का शील।
किया[1] मित्रों ने भी अनुरोध,
क्षमा-याच्ञा[2] का देकर बोध।

१ इसके लिए। 'अमृतबाजार पत्रिका' के सम्पादक श्री० मोतीलाल घोष का यही मत था। २ याचना।

५४—किन्तु था तिलकोत्तर निर्भीक,—
"माँगते कब निर्दोषी भीक ?
सह्य है मुझको विषम व्यलीक[1],
छोड़ना किन्तु नहीं ध्रुव लीक।
दण्ड क्या, मिले अण्डमन-वास,
क्षमा का भाव न होगा पास।"

५५—गया जब कारागृह मे बाल,
देश का पूज्य, भारती-लाल।
बिताता सुख से आपत्काल,
दीप्त ही था वह भाल विशाल।
विदेशी विद्वन्मण्डल लुब्ध,
हुआ इस को सुनकर अति क्षुब्ध।

५६—देखकर अतुल आत्म-विज्ञान,
वेद शास्त्रों का गहरा ज्ञान।
मैक्समूलर, हण्टर विद्वान,
तिलक का करते थे अति मान।
उन्हें उस प्रतिमा का आलोक,
मिला था 'ओरायन'[2] अवलोक।

१ व्यथा। २ तिलकने १८९३ मे मृगशीर्ष नक्षत्र से वेद-काल-निर्णय पर 'ओरायन' लेख लण्डन की प्राच्य परिषद् मे भेजा था, जिसका बड़ा आदर हुआ था। यही लेख फिर पुस्तकाकार छपा था।

५७—विलक्षण-बुद्धि-मनन का माप,
लेख वह बोल रहा था आप।
तिलक का जिस से कीर्ति-कलाप,
गया था योरप भर में व्याप।
'प्राच्य परिषद्' के विद्वद्वर्य,
सभी थे लन्दन में साश्चर्य।

५८—तिलक-प्रतिभा-प्रज्ञा-पाण्डित्य,
दीप्त थे गौरव-गगनादित्य,[1]
युक्त हो राजनीति, साहित्य,
दिखाते थे अद्भुत लालित्य।
उन्हें सुन कारागृह में बन्द,
न होता द्रवित कौन मतिमन्द?

५९—किया साम्राज्ञी[2] ने अनुरोध,
मैक्समूलर ने पाकर शोध।
कराके विद्वत्ता का बोध,
राज्य-सत्ता का किया विरोध।
हुआ पर, उस का सफल प्रयास,
[3] शेष थे जब केवल छः मास।

१ गौरव रूपी आकाश के सूर्य। २ महारानी विक्टोरिया।
३ ६ सितम्बर १८९८ ई०।

६०—तिलक की अनुपम अन्तःशक्ति,
अचल सी अविचल भारत-भक्ति,
सिंह सा साहस, विरल विरक्ति,
ओज की करती थी उत्पत्ति।
चला कारा से जब वह भीम,
लोक की श्रद्धा बढ़ी असीम।

६१—गिराता चला गर्व पर गदा,
समर-हित सज्जित शूर सदा।
हुआ जो रहा भाग्य में बदा,
किन्तु थी उस की अटल अदा।
न लेते कर्मठ कभी विराम,
ध्येय ही है उन का ध्रुव धाम।

षष्ठ सर्ग

(तपस्या)

---

(१)

अग्नि-ताप से स्वर्ण-छटा,
घर्म-घर्ष से घोर-घटा,
बढ़ती है, न कि घटती है,
चढ़ती है, न कि छटती है।

(२)

ऐसे ही उन वीरों को—
देशभक्त ध्रुव-धीरों को,
होती कारागार-व्यथा,
बढ़ती जिस से कीर्ति-कथा।

(३)

वे उन बन्धन-द्वारों में—
दैहिक दुःखागारों में,
मानस-मोद-मनाते हैं,
आत्म-शुद्धि-पथ पाते हैं।

१ धूप। २ जेल। ३ मन का आनन्द।

(४)

वैर्धित तिलकोत्साह रहा,
दुस्सह कारा-कष्ट सहा।
मन्द केसरी-नाद न था,
देखा तनिक प्रमाद न था।

(५)

महाराष्ट्र के नेता वे,
विषम-विपत्ति-विजेता वे।
भारत भर मे ख्यात हुए,
ओजस्वी अवैदात हुए।

(६)

हृदयों के सम्राट हुए,
कर्म-क्षेत्र-विराट हुए,
युवकों के आदर्श हुए,
कृषकों के आमर्श हुए।

(७)

राष्ट्र-रङ्ग-अवतार हुए,
पतितों के पतवार हुए।
अन्धों की दो आँख हुए।
स्वत्व-प्रेमी की शाख हुए।

१ बढ़ा हुआ। २ प्रसिद्ध। ३ शोभा। ४ टॉपर वृक्ष।

(८)

शक्तिधरों को शूल हुए,

वद्धकरों को फूल हुए।

शठ को शस्त्र सतृष्ण हुए,

कण्टक-काली-कृष्ण हुए।

(९)

† कर्ज़न की आकांक्षाएँ,

पूर्व[1]-विजयिनी वाञ्छाएँ।

कुटिला कूट[2]-कलाएँ वे,

वन्धन-विकट-वलाएँ वे।

(१०)

नाश-नीति की कैरिणी[3] वे,

देश-दीप्ति की हरणी वे।

मिलकर साहस-सत्ता से,

बुद्धि-विनय[4], नयमत्ता[5] से।

(११)

अविरल[6] श्रम की क्षमता[7] से,

दक्षदृष्टि[8]—उद्यमता से।

प्रजा-प्राण-पूतना वनी,

हुई वाल ने ठना-ठनी।

† लार्ड कर्ज़न (१९०५)। १ पूर्वीय देश। २ कूट नीति। ३ हथिनी। ४ शिक्षा। ५ नीति-कौशल। ६ लगातार। ७ शक्ति। ८ चतुर दृष्टि।

(१२)

वे अनुकूल परिस्थिति से
लाभ उठाना द्रुतगति से,
कभी न चूके जीवन में,
निर्भय नीति बसी मन में।

(१३)

राजनीति की पटुताएँ,
कर्जन-कृत की कटुताएँ,
दिखलाते प्रत्यक्ष रहे,
सत्ता के समकक्ष रहे।

(१४)

उन की उन्नत गतियों से,
मेधा-मण्डित मतियों से।
जलते देश-कलङ्क रहे,
नीच कहाँ न सशङ्क रहे ?

(१५)

मिलकर नौकरशाही से,
करके मेल तबाही से,
तिलक महत्व गिराने को,
पामरता-पद पाने को,

१ चतुराइयाँ। बलिदान (sacrifice)। ३ नीचता।

(१६)

रचने क्रूर कुचक्र लगे,
न्याय निगलने नक्र लगे।
¶ भरकर भोली ताई को,
बाबा-विधुरा बाई को।

(१७)

किया एक अभियोग खड़ा,
जीवन भर जो गया लड़ा।
तिलक विशुद्धाचरण यहाँ,
देकर दोषावरण यहाँ,

(१८)

विधु का वदन छिपाना था,
दुर्नय-राहु दिखाना था।
मिथ्या-साक्ष्य व्याल-मुख से,
जाल जघन्य साधु-रुख से!

१ ग्राह। जब लोकमान्य जेल से छूटे तो उन के एक मित्र 'सरदार बाबा महाराज' मरणासन्न हुए। वे सन्तानहीन थे। उन्होंने आग्रह पूर्वक तिलक को अपनी जायदाद का ट्रस्टी बनाया। तिलकने आसन्नमृतक मित्र की इच्छा पूरी करना अपना कर्त्तव्य समझा। वे ट्रस्टी बन गये। बाबा के मरने पर उन की विधवा पत्नी 'ताई महाराज' की इच्छा से उन्हें एक पुत्र गोद रखवा दिया। पीछे से कुछ लोगों ने ताई महाराज को बहकाकर यह कहलाया कि यह पुत्र मुझे जबरदस्ती गोद दिया गया है। इस पर सरकार ने पोलिटिकल एजेण्ट से जाँच कराकर तिलक पर जाली दस्तावेज़ और झूठी गवाही देने का मुकदमा चलाया। जिस का अन्तिम फैसला लोकमान्य की मृत्यु के ३, ४ दिन पूर्व ही उन के पक्ष में हुआ था।

(१९)

कैसे लम्पट लाञ्छन थे ?
नीचाशय के वाञ्छन थे !
† राज-कोप था खुला हुआ,
तिलक-दमन को तुला हुआ।

(२०)

¶ इस अभियोग-ग्रस्त हुए,
तिलक अहर्निश व्यस्त हुए।
किन्तु न कुछ भी त्रस्त हुए,
थे कर्त्तव्य समस्त हुए।

(२१)

नय-नियमों के ज्ञाता वे,
उसके शिक्षादाता वे,
यदपि वृत्ति से दूर रहे,
पर पण्डित भरपूर रहे।

(२२)

अपने आप विवादों से,
निश्छल निर्भर नादों से।
मान कोर्ट का मथते थे,
निर्व्यानों को नथने थे।

† सरकार ने इस मुकद्दमे में ६०, ७० हज़ार रुपये खर्च किये थे।
¶ इस अभियोग की ७॥ वर्ष में १२० पेशियाँ हुई थीं।
१ रातदिन। २ क़ानून के शिक्षक। ३ कचहरी। ४ चतुरों।

(२३)

निर्णय जब विपरीत हुआ,
दण्ड-प्रदान प्रतीत हुआ।
ज़रा न हुए ससम्भ्रम थे,
नोट ले रहे निर्मम¹ थे।

(२४)

हुई अपील, वकीलों ने—
पटुतम² अनुभवशीलों ने,
देख तिलक के नोट वही,
माने थे सब भाँति सही।

(२५)

ऐसा अविचल मेधावी³,
दुख में होशों पर हावी⁴।
देखा किस ने? बतलावे,
जाना जिस ने, जतलावे।

(२६)

अपना पक्ष निभाने में,
इष्ट वस्तु के पाने में,
साधन शेष न रखते थे,
निश्चित लक्ष्य निरखते थे।

१ निश्चिन्त (Indifferent)। २ परमचतुर। ३ शुद्ध बुद्धिवाला।
४ क़ाबू रखनेवाला।

(२७)

घुमड़ी थी घनघोर घटा,
दिवानाथ[1] की छिपा छटा।
कलुष—कालिमा—मेघाली[2],
दृष्टि पड़ी दुर्दिनवाली[3]।

(२८)

तिलक—तेज ने तप्त उसे,
करके छिन्न-क्षिप्त[4] उसे,
उठ कर कज्जल-कानन से,
अपने उज्ज्वल आनन से,

(२९)

हृत्पद्मों को खिला दिया,
छल-छद्मों को हिला दिया।
वे नितान्त निर्दोष हुए,
शत्रु कालिमा-कोप हुए।

(३०)

इतने अधिक परिश्रम से,
व्यस्त विशाल व्यतिक्रम में।
वे ही उत्कट उत्साही,
हटे न राष्ट्र-ध्वज-वाही।

१ सूर्य। २ बादलों की घटा। ३ मूसलाधार वर्षा। ४ तितर बितर।

(३१)

उस ऊर्जस्वी नेता की,
गीता-ग्रन्थ-प्रणेता की।
धज ही निपट निराली थी,
कार्य शक्ति क्या ? काली थी।

(३२)

वह दुष्टों के दलने में,
मानी का मद मलने में,
रहती थी कटिबद्ध सदा,
सेवा में सन्नद्ध सदा।

(३३)

पावक बन प्रत्यूहों[2] को,
तेज तमिस्र[3]-समूहों को।
चपला चारों ओर बनी,
दिखलाती थी ओज-अनी।

(३४)

उस के बल का सार सुनो,
शत्रु[4] शिरोलोद्गार सुनो.—
"केस[5] कष्ट से शान्त हुआ,
तिलक न तो भी श्रान्त हुआ।

१ बनानेवाला। २ बाधाओं। ३ अन्धकार। ४ सर वैलेण्टाइन शिरोल, जो तिलक का कट्टर विरोधी था। ५ मुकद्दमा।

(३५)

सार्वजनिक आन्दोलन में,
सामाजिक संतोलन में,
पत्रों के प्रिय-लेखों में,
वक्तृत्वों की रेखों में।

(३६)

त्रुटियाँ तनिक न पड़ने दीं,
संस्थाएँ न बिगड़ने दीं।
कृत की कलियाँ बढ़ने दीं,
झञ्झट-झड़ियाँ झड़ने दीं।

(३७)

दस्यु-शृङ्खला कर्ज़न की,
परिघा आत्म-विसर्जन की।
दिन दिन होती गई कड़ी,
लोलुपता की बँधी लड़ी।

(३८)

हेय दृष्टि से देख हमें,
कृमि कीटों में लेख हमें।
उसकी † उद्धत बातें थीं,
घृणय घोरतम घातें थीं।

† लार्ड कर्ज़न ने कहा था कि एशियावासी असत्यभाषी हैं। और, महारानी विक्टोरिया की १८५८ ई० की घोषणा को वह असम्भाव्य दस्तावेज़ कहा करता था।

(३९)

इधर विजय जापानी ने,
देश–प्रेम लासानी[1] ने,
हुतभुज्[2] को था हव्य दिया,
नैतिक दर्शन नव्य दिया।

(४०)

† शिक्षा-पथ की बाधाएँ,
अड़चन अमित अगाधाएँ।
असन्तोष की वर्धक थीं,
मान-महत्ता-मर्दक थीं।

(४१)

कि था § वंग-विच्छेद हुआ—
अन्तराग्नि उद्भेद[3] हुआ।
उस से वह उद्गार हुआ,
दैन्य-देश था क्षार हुआ।

(४२)

जल जागृति की ज्वालाएँ—
आत्म-मान की मालाएँ,
करती थीं नव सृष्टि खड़ी,
वीर-वृष्टि सी दृष्टि पड़ी।

१ अनुपम। २ अग्नि। † यूनीवरसिटी एक्ट (१९०४ ई०)।
§ १९०५ ई०। ३ फूटना।

(४३)

अव्य स्वदेशी-घोष हुआ,
सोता बङ्ग सरोष हुआ।
तिलक-स्फुरणा द्वारा वह,
बना विचित्र दुधारा वह।

(४४)

बहिष्कार की बाढ़ बना,
वैदेशिक व्यापार हना।
देशी वस्तु-प्रचार घना
किया स्वदेशी स्नेह-सना।

(४५)

सुन 'केसरी'-दहाड़ों को,
उन बङ्गीय अखाड़ों को,
जो भारत माँ के धन थे,
माँ-हित जिन के तन मन थे,

(४६)

जिन्हें प्रतिष्ठा प्यारी थी,
हिम्मत गई न हारी थी,
ज्यों ज्यों तिलकोत्साह मिला,
त्यों त्यों प्रेमोद्वाह चला।

१ स्फूर्ति। २ बायकाट। (Boycott) ३ बङ्गालके। ४ प्रेम की धारा।

(४७)

स्वावलम्ब-अनुराग वहाँ,
था स्वातन्त्र्य-पराग वहाँ,
उन के मञ्जु मिलिन्द¹ वहाँ,
विपिनचन्द्र, अरविन्द वहाँ,

(४८)

भारत-गूँज गुँजाते थे,
माँ-पद पूज पुजाते थे।
अब वे भोले बङ्गाली,
धोती धर ढीली ढाली,

(४९)

भारत-गौरव-गर्जन से,
मोद-विनोद-विसर्जन² से,
आगे बढ़कर खड़े हुए,
स्वत्व-समर-हित अड़े हुए,

(५०)

राष्ट्र-सभा के मञ्चों³ से,
प्रण-धन्वा⁴-प्रत्यञ्चों से।
करते थे टङ्कार वहाँ,
शक्ति-झिजम-झङ्कार वहाँ।

१ भौंरा। २ त्याग। ३ प्लेटफार्मों। ४ धनुष।

(५१)

राष्ट्र-सूत्रधर बाल यहाँ,

वढ़ा प्रभाव विशाल यहाँ।

अमोघास्त्र की शक्ति दिखा,

उसका पूर्ण प्रयोग सिखा,

(५२)

उत्तेजन उन्निद्रों को

दे, दिखला रिपु-छिद्रों को,

आगे आप बढ़ाते थे,

चेतन-चाप चढ़ाते थे।

(५३)

† काशी के अधिवेशन में,

नया जोश था नेशन में।

गूँजी गोपाल-ध्वनि थी,

ऊँची उठी जन-स्वन थी।

(५४)

बहिष्कार प्रतिपादित था,

मण्डप ओजाच्छादित था।

तिसपर दादाभाई ने,

अद्भुत अध्यवसायी ने,

१ अव्यर्थ अस्त्र। २ जगे हुए। † भारतीय कांग्रेस (१९०५)। राष्ट्र।
४ स्व० गोपालकृष्ण गोखले जो सभापति थे। ५ जनता की वाणी।

(५५)

छेड़ वर्र के छत्ते को,

* उठा दिया कलकत्ते को।

नूतन मंत्र पढ़ाया था,

यंत्र स्वतंत्र गढ़ाया था।

(५६)

राजनीति का वह माली,

छोड़ छाड़ पत्ते डाली,

जड़-सिञ्चन की ओर झुका,

देख पतन का छोर रुका।

(५७)

घोषित घोष 'स्वराज्य' हुआ,

श्रेय सङ्कुचित त्याज्य हुआ।

वृद्धवीर था याज्य हुआ,

तिलक-त्रयी का आज्य हुआ।

(५८)

फैली स्वत्व-सुगन्ध महा,

भारत में निर्बन्ध अहा!

राष्ट्र-पक्ष की सत्ता से,

उस की इष्ट इयत्ता से,

* १९०६ ई० में कांग्रेस कलकत्ते में हुई थी। स्व० दादाभाई नौरोजी सभापति थे। यहीं सब से पहले स्वराज्य प्रस्ताव पास हुआ था। १ छिद्रदाता। २ स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा। ३ भी।

(५९)

ले स्वच्छन्द विचारों को,
जनता ने अधिकारों को
पहिचाना, फिर पहिचाना,
पहना वीरों का बाना।

(६०)

भिक्षावृत्ति भुला ही दी,
याचक-युक्ति सुला ही दी।
थीं अब नहीं अनाथाएँ,
शुभ स्वराज्य की गाथाएँ।

(६१)

उठकर उन युवराजों ने—
भारत-युवक-समाजों ने,
स्वतन्त्रता को अपनाया,
गीत गर्वयुत यों गाया:—

(६२)

"भारत भाग्यवालों को,
गोरों को या कालों को।
है न दास्य के दूतों को,
[1]प्रभुता-पति पर[2]-पूतों को।"

१ अधिकारवाले। २ दूसरे के पुत्र।

(६३)

सुन यों कुछ कापुरुष हिले,

शासक-दल में मिले मिले

औपनिवेशिक सत्ता को,

जड़ तज पकड़े पत्ता को,

(६४)

मन में महा प्रसन्न हुए,

अज्ञानी अवसन्न हुए।

ध्येय 'स्वराज्य' मात्र जिन का

था आदर्श-पात्र जिन का,

(६५)

पीछे पैर हटाना वे,

गिनते थे गिर जाना वे।

† सूरत में दोनों दल थे,

उच्चाशा के उत्पल थे,

(६६)

पकड़ पाश में फिरा दिये,

गति गजिनी ने गिरा दिये।

मेल-खोपड़ी खिली वहाँ,

पिचकी नुकत-तिल्ली वहाँ।

१ डरपोक। २ डूबे हुए। † कांग्रेस १९०७ ई०। २ कमल।

(६७)

बेल फूट की फली वहाँ,
टूटी कोमल कली वहाँ।
तिलक-गोखले-वाद वहाँ,
लाया पाप-प्रसाद वहाँ।

(६८)

उसके दुहराने से क्या ?
गृह-विग्रह गाने से क्या ?
समय स्वयं ही बता चुका,
भूल कहाँ थी जता चुका।

(६९)

फिर अब उसको तोलें क्यों ?
गड़ी शवों को खोलें क्यों ?
थे दो बन्धु विभक्त हुए,
नरम, गरम दल व्यक्त हुए।

(७०)

वाग्वीरता द्वारा वे,
बने देश-शिर-धारा वे,
उनकी विग्रह-चर्चाएँ,
पत्रों की थीं अर्चाएँ।

१ घर का झगड़ा। २ झगड़ों। ३ बातों की बहादुरी। ४ पूजा।

(७१)

छोटी छोटी घटनाएँ,

बनकर उन की रटनाएँ,

व्यर्थ विवाद-स्थलियाँ थीं,

द्वेष-गर्त्त की गलियाँ थीं।

(७२)

उधर वङ्ग-रङ्ग-स्थल में,

पलट जवनिका पल पल में,

दुर्घट दृश्य दिखाती थी,

चतुरों को चमकाती थी।

(७३)

वङ्ग-भङ्ग की चोट वहाँ,

हुई उपद्रव-ओट वहाँ,

हत्या, लूट, खसोट वहाँ,

थे आशा के पोट वहाँ।

(७४)

लोभ क्रोध के कोट वहाँ,

भाँग भक्ति की घोट वहाँ,

गिनते खरा न खोट वहाँ,

पड़े, जान पर लोट वहाँ।

१ गड्ढा। २ पारा।

(७५)

बना बम्ब के गोले वे,
सीना सम्मुख खोले वे,
बन्धन विकट छुड़ाने को,
शासक-शीश उड़ाने को,

(७६)

बलि-वेदी-आरूढ़ हुए,
गूढ़-विचार-विमूढ़ हुए।
करने हत्याकाण्ड लगे,
भरने भ्रान्तिज भाण्ड लगे।

(७७)

¶ आशा की उस राका में,
काण्ड हुआ क्या ढाका में?
मजिस्ट्रेट का खून हुआ,
नीति-निशाकर न्यून हुआ।

(७८)

अन्धकार की शाला में,
वृद्धि हुई वैर-माला में,
नरम-गरम-नीतियों को—
भाव-भक्ति-प्रीतियों को,

१ बर्तन। ¶ सूरत कांग्रेस से दो दिन पहले। २ पूर्णिमा की रात।
३ चन्द्रमा। ४ फ़लक।

(७९)

था इस का अनुमान कहाँ ?

इन भूलों का भान कहाँ ?

वे इन हेय उपायों को,

विद्रोही व्यवसायों को,

(८०)

पाप-मूल थे जान रहे,

महाभूल थे मान रहे।

गोरा-दल विक्षिप्त[1] हुआ,

द्वेष, क्रोध से लिप्त हुआ।

(८१)

उसे दमन[2]-दावानल से,

शस्त्र-शूरता के बल से,

राष्ट्रिय-पक्ष दबाने की,

सूझी युक्ति सताने की।

(८२)

"पत्रों का दो घोंट गला,

है अनर्थकर यही कला,

राष्ट्र-पक्ष के व्याख्याता,

हैं इस दल के निर्माता[3],

१ पागल। २ दबाना (repression)। ३ सम्पादन-कर्ता।

(८३)

चुगने दो न उन्हें फूली,

† एक साथ दे दो शूली।

शासन-सत्ता दिखला दो,

फल उभाड़ का सिखला दो।"

(८४)

ये उद्गार उगलकर वे,

ऊँचे उठा युगल कर वे,

आंग्ल लोग यों चिल्लाते,

'बदला, बदला' थे गाते।

(८५)

यहाँ तिलक वस्तु-स्थिति का—

दिग्दर्शन हुआ अति का—

करा 'केसरी' के मुख से,

दग्ध हुए दुर्विध-दुख से।

(८६)

अप्रिय किन्तु सत्य वाणी,

कहते थे मुनि, कल्याणी—

"वङ्ग-भङ्ग से क्षुब्ध[१] प्रजा,

आत्मार्पण के मार्ग लगा,

† प्रसिद्ध एंग्लो इण्डियन पत्र पायोनियर की यह राय थी।
१ क्षुब्ध। व्याकुल (agitated)।

(८७)

विवशा विपुल अधीरा हो,
साहस-सलिल-सनीरा हो,
उमड़ी है उद्वेग-भरी,
तर न सकेगी दमन-तरी।

(८८)

वह अधिकारों की प्यासी,
है न पतित-पद्धति-दासी।
उत्पीड़न से ऊबी है,
लखी खून में खूबी है।

(८९)

यदि उस को अधिकार मिलें,
फिर बहार-सहकार खिलें।
महकें जिन की मंञ्जरियाँ,
बजें वसन्ती खञ्जरियाँ।

(९०)

जब अधिकार-दान-वेला,
हुई लोकमत-अवहेला,
हठ ने हत्या उपजाई,
तब तब क्रान्ति-घटा छाई।

१ नाव। अधिक सताना। ३ आम। ४ कलियाँ ५ समय। ६ अनादर।

(६१)

जन्मे जब स्वाधीनात्मा,

प्रौढ़, प्रेमधन, पीनात्मा,

दब जाते हैं दीनात्मा,

हट जाते हैं हीनात्मा।

(६२)

उन में आतुर-मतिवाले,

अपरिपक्व, द्रुत-गतिवाले,

रहें दमन से लुप्त यदा,

करें उपद्रव गुप्त तदा।

(६३)

उन का ताप इलाज नहीं,

नीति उन्हें अधिराज नहीं।

देश–प्रेम–मतवाले वे,

पीकर विष के प्याले वे,

(६४)

हँसते हँसते चल देते,

किन्तु क्रान्ति को बल देते।

मान लोकमत अधिकारी,

होंगे सुयश पुण्य भागी।

१ क्षुद्र आत्मावाले। २ कच्चा। ३ अदृश्य।

(६५)

राज्य-प्रतिष्ठा[1]-पात इसे,
कहना नाम-निपात इसे,
मत्सर-ग्रस्त-कल्पना है,
जड़मति-जाड्य[2]-जल्पना[3] है।"

(६६)

किन्तु क्रुद्ध सरकार नहीं,
सुनती लोक-विचार कहीं।
उस की शान इसी में है,
कि न उत्थान किसी में है।

(६७)

उसे देव-सम आराधे[4],
दबकर प्रजा मौन साधे।
ईश्वर-अंश उसे माने,
पूजित-वंश उसे जाने।

(६८)

किन्तु निसर्ग[5] नये क्रम से,
करती दूर उसे भ्रम से।
दीनों के दृग भी खुलते,
बन्धन से मृग ज्यों खुलते।

१ प्रधानता (prestige)। २ मूर्खता। ३ बकवाद। ४ पूजे। ५ प्रकृति।

(९९)

पशु-बल से हो कार्य जहाँ,
प्रतिक्रिया अनिवार्य वहाँ।
राजनीति की कुटिल मही,
रही देखती दृश्य यही।

(१००)

तिलक-सीख हित-सनी वहाँ,
वने-रोदन ही बनी वहाँ।
अगुआ-दल के शीश खड़ा,
दमन-शस्त्र ही दीख पड़ा।

(१०१)

पत्रों पर थी प्रथम बला,
उन का घोंटा गया गला।
'काल', 'केसरी' लक्ष्य हुए,
प्रथम यही दो भक्ष्य हुए।

(१०२)

परांजपे को पकड़ा ज्यों,
द्रोह-जाल में जकड़ा त्यों,
त्यों ही तिलक सहाय बने,
गये बम्बई क्रोध-सने।

१ वन में रोना (निरर्थक)। २ 'काल' के सम्पादक थे।

(१०३)

शक्ति-सर्प ने साँस लिया,
† वहीं उन्हें भी फाँस लिया।
दर्प-दंश की दाराएँ,
कूट नीति की * धाराएँ,

(१०४)

जिह्वाएँ दो दृष्टि पड़ीं,
फुफुङ्कार की लगी लड़ीं।
किन्तु अचल के आगे क्या?
धीर धर्म को त्यागे क्या?

(१०५)

साधारण अभियोग न था,
केवल बन्धु-वियोग न था।
शत्रु-सङ्गठित-सैन्य वहाँ,
केवल तिलक अदैन्य यहाँ।

(१०६)

¶ वैरिस्टर विख्यात वहाँ,
तिलक मात्र का गात यहाँ।
धन से धवल प्रभात वहाँ,
काली केवल रात यहाँ।

† २४ जून, १९०८। * १२४ अ, १५३ अ। १ वीरता। ¶ मि० जैन्सन, इन्स्पेक्टर, विनिङ्ग।

(१०७)

न्याय-यष्टि[1] का हाथ वहाँ,

परमात्मा ही नाथ यहाँ।

शासन-सत्ता साथ वहाँ,

पास न पत्ता पाथ यहाँ।

(१०८)

दण्डनीति-दुर्व्यूह[2] वहाँ,

सङ्कट-भीति-समूह यहाँ।

दूर न देश दुरूह[3] वहाँ,

पद पद पर प्रत्यूह[4] यहाँ।

(१०९)

किन्तु केसरी रणबङ्का,

करता कब किस की शङ्का?

रिपु की लुटा स्वर्ण-लङ्का,

देता बजा विजय-डङ्का।

(११०)

† दश दिन तक अभियोग-छटा,

अरि-दल की अनुराग घटा,

वाचक! दर्शनीय ही थी,

उर-आकर्षणीय ही थी।

१ छड़ी। २ दल। ३ जहाँ कठिनता से पहुँचा जाय। ४ बाधा।

† १३ जौलाई से २२ जौलाई के रात के दस बजे तक।

(१११)

उधर अनेकों महारथी !
इधर बाल ही रहा रथी[1] !
उन की शास्त्र-प्रहार-व्यथा,
सहता था सौमेद्र यथा।

(११२)

अपने तीव्र तर्क द्वारा,
कुण्ठित कर रिपु-शर-धारा,
उन के दिल दहलाता था,
'साधु, साधु' कहलाता था।

(११३)

उस के निर्भय भाषण से,
भीमाकृति भट के रण से,
विद्युत्-विभा बरसती थी,
सारी सभा सरसती थी।

(११४)

सुन सतेज वाक्यावलियाँ,
मंत्र-मुग्ध दर्शक-गलियाँ[2],
नीरवै[3] चित्राङ्कित सी थीं,
नर वा सुर ? शङ्कित सी थीं।

१ अभिमन्यु २ Visiter's galleries. ३ चुप।

(११५)

सम्मुख सचकित जूरी थी,
¶ जो विपक्ष से पूरी थी।
वे एकत्र नवग्रह से,
निज-अनुरूप अनुग्रह से,

(११६)

दृष्टि तिलक पर डाले थे,
फोड़ रहे हिय-छाले थे।
तन गोरे, मन काले थे,
मुख भोले, दृग भाले थे।

(११७)

*तिमिराच्छन्न नभस्थल था,
अत्युत्सुक दर्शक-दल था।
† अर्द्धनिशा का आगम था,
बड़ा विचित्र समागम था।

(११८)

हिलता था न वहाँ पत्ता,
थी सर्वत्र शान्ति-सत्ता,
उस निस्तब्ध निशा में क्या?
देखा एक दिशा में क्या?

* ७ यूरोपियन + २ हिन्दुस्तानी (मराठी से अनभिज्ञ)। † रात के दस बजे। ¶ प्रमान्ध।

(११९)

श्रान्त चार दिन के श्रम से,
सतत सतर्क अनुक्रम से,
सङ्कट-शकटों को ठेले,
छप्पन शरदातप[1] झेले।

(१२०)

देव-दूत सा खड़ा हुआ,
तिलक तपस्वी अड़ा हुआ,
देता देव-परीक्षा है,
जज[2] की जहाँ समीक्षा है:—

(१२१)

"देश-प्रेम असीम जता,
तिलक! काट कल्याण-लता,
व्याधिग्रस्त बुद्धि द्वारा,
बहा रहे विप्लव-धारा।"

(१२२)

"फिर भी दया-दण्ड इतना
देता हूँ कि सहो जितना,
छः साल की सज़ा यानी,
निर्वासन[3] में है पानी।"

१ शरद—वर्ष। २ मि० दावर (ध्यान रहे कि तिलक के पहले मुक़दमे में यही उनकी पैरवी करनेवाले बरिस्टर थे)। ३ देश निकाला।

(१२३)

† "जुर्माना भी सहना है,
बोलो ! क्या कुछ कहना है ?"
प्रबल प्रलोभन पाते भी,
काल-गाल में जाते भी,

(१२४)

था वह ओज स्फुटित[1] हुआ,
ज्योति-जाल भू-लुठित[2] हुआ।
विद्युच्छटा छुटी छवि की,
कुण्ठित[3] कान्ति हुई रवि की।

(१२५)

श्रव्य तिलक-घन-घोष हुआ,
सुनकर किसे न तोष हुआ ?
"ज्यूरी के मत में दोषी,
तो भी हूँ मैं निर्दोषी।

(१२६)

कहता अन्तःकरण यही,
शक्ति मानवी प्रबल नहीं,
किन्तु प्रबलतर विभु-बल है,
राष्ट्र-नियति[4] की जो कल है।

† १०००)। १ प्रकट। २ पृथ्वी पर फैला हुआ। ३ धीमी।
४ भाग्य (Destiny).

(१२७)

उस की यही भावना हो,
मेरी पूर्ण कामना हो
कारागृह में जाकर ही,
कष्ट वन्दि के पाकर ही।"

(१२८)

सुनकर यह गम्भीर गिरा,
गर्व-गोष्ठि[2] पर नीर गिरा।
जज ने वह मुँह की खाई,
थाह न थी जिस की पाई।

(१२९)

धन्य धन्य वर वीर तिलक!
धन्य धीर, गम्भीर तिलक!
धन्य सहिष्णु-शरीर तिलक!
धन्य स्वदेश-समीर तिलक!

(१३०)

'जरा-ग्रस्त काया कैसी?
बन्धु-मोह-माया कैसी?
पुत्रि-पुत्र, जाया कैसी?
कोप-क्षोभ-छाया कैसी?"

१ जेल। २ समूह; मण्डली। ३ बुढापा। ४ स्त्री। ५ रञ्ज।

(१३१)

तुम ने क्या कुछ भी जाना ?
दीर्घ दण्ड क्या अनुमाना ?
बैठ ट्रेन में जो सोये,
जाने कष्ट कहाँ खोये !

(१३२)

गये जगाये तब जागे,
साबरमती जेल आगे,
गान्धी आश्रम आज जहाँ,
सत्याग्रही-समाज जहाँ ।

(१३३)

कहाँ चित्त की यह क्षमता ?
कहाँ अलौकिक निर्ममता ?
यह निष्काम प्रवृत्ति कहाँ ?
अद्भुत योग-निवृत्ति कहाँ ?

(१३४)

तुम जिस को जीवन-बलि दो,
पूत[1]-प्रेम-पुष्पाञ्जलि[2] दो,
जनता जाने ही जाने,
प्रभुता माने ही माने ।

१ पवित्र। २ फूलों की अञ्जलि।

(१३५)

क्या आश्चर्य हृदय उमड़े ?
भय की भूरि घटा घुमड़े ?
तुम जब बन्दी व्यर्थ बनो,
पर हित में असमर्थ बनो।

(१३६)

निर्णय भी न सुनाया हो,
कारण भी न बताया हो।
जेल-प्रबन्ध परन्तु रहे,
गुप्त ताप का तन्तु रहे।

(१३७)

तिलक गोप्य पथ से जावें,
दर्शन भी न भक्त पावें।
फिर वे कुछ उत्पात करें,
रुधिर-लिप्त निज गात करें,

(१३८)

हो किस का अपराध कहो ?
यह अन्धेर अबाध अहो !
वाचक ! देश-निकाले में,
आओ उन मैण्डाले में,

१ छिपाने योग्य। २ परोक्ष। ३ ब्रह्मदेश की राजधानी

(१३९)

जहाँ बाल योगी बैठा,
दृढ़ दीर्घोद्योगी बैठा,
भूले भूत कथाओं को,
विविधा विपुल व्यथाओं को,

(१४०)

आत्म[1]-विचिन्तन-लीन हुआ,
शान्त-चित्त, स्वाधीन हुआ,
प्रभु-प्रदत्त प्रतिभा द्वारा,
अन्तःकरण-विभा द्वारा,

(१४१)

मग्न रहस्योद्‌घाटन[2] में,
लग्न न लोकोच्चाटन में।
गीता-गौरव दिखा रहा,
कर्म-योग-विधि सिखा रहा।

(१४२)

पाकर वह एकान्त वहाँ,
[3]पारायणाना-प्रान्त वहाँ,
हरने को भव भ्रान्ति वहाँ,
किये विचार-क्रान्ति वहाँ,

१ आत्मविचार। २ रहस्य=गीतारहस्य; जीवन-रहस्य। ३ मनन।

(१४३)

गीता-रत्नाकर-तल से,
वैदिक-मत-गभीर-जल से,
संग्रह कर मौलिक[1] मुक्ता,
माला गूँथ युक्ति-युक्ता,

(१४४)

लेकर ललित लोल लड़ियाँ,
जड़कर दिव्य-तत्व-मणियाँ,
माँ का मुकुट सजाता है,
जय का शङ्ख बजाता है।

(१४५)

अन्तर्बाह्य[2] एक रस है,
जाता जहाँ भाग्य-वस है
राष्ट्र-मंत्र ही गाता है,
भाव विभिन्न न भाता है,

(१४६)

सर्वस भारत-माता है,
केवल उस से नाता है,
वह उस की बल-दाता है,
त्रैता[3], तनु-निर्माता है।

१ असली। २ भीतर बाहर। ३ रक्षिका।

(१४७)

जगज्जाल से मुक्ति मिली,
मञ्जु मानसिक कली खिली,
माँ पर उसे चढ़ाता है,
उसी मूर्ति को ध्याता[1] है।

(१४८)

परिजन मिलने जाते हैं,
वन्द द्वार वह पाते हैं,—
जिस में मेरा तेरा है,
मायाजन्य[2] अँधेरा है।

(१४९)

करता उन से वात वही,
रटता जो दिन रात वही,
अच्युत[3] की अवदात वही,
थी अर्जुन को ज्ञात वही।

(१५०)

कैसी निर्विकारता है!
आचारिक उदारता है!
अनुद्विग्नता[4], समता है!
अहो! अलौकिक अमता है!

१ ध्यान करता है। २ माया से उत्पन्न। ३ भगवान् कृष्ण।
४ अचञ्चलता।

(१५१)

जिस की व्यथा न है गाई,
सती सत्यभामा—बाई,
चिर-सङ्गिनी वीर-भार्या,
शुचि, सरला, सौम्या, आर्या,

(१५२)

पति-वियोग-निःसत्व[1] वहाँ,
पाती है पञ्चत्व[2] वहाँ।
सह वह वज्र-निपात यहाँ,
अचल तिलक का गात यहाँ—

(१५३)

किञ्चित् धर्मच्युत न हुआ,
मन अधीरता-युत न हुआ।
झेला वह वियोग ऐसे,
वडवा-नल[3] सागर जैसे।

(१५४)

त्यागी था कि तपस्वी था ?
मानी था कि मनस्वी था ?
था गृहस्थ वा संन्यासी ?
कि था उदासी अविलासी ?

१ शक्तिहीन। २ मृत्यु। ३ पृथ्वी के भीतर की आग।

(१५५)

पण्डित प्रतिभाधारी था ?

वा नैतिक आचारी था ?

कवि वा तत्वज्ञानी था ?

नर कि अमर सेनानी था ?

(१५६)

जो जाना चाहो, जाओ,

वह '*गीता-रहस्य*' लाओ।

उस का मन से मनन करो,

हृदय-हीनता हनन करो।

(१५७)

देखो दिव्य स्वरूप वहाँ,

संस्थित तिलक-स्तूप वहाँ।

भारत भू का भूप वहाँ,

अपना राज्य अनूप वहाँ।

सप्तम सर्ग

(फलोदय)

(१)

उस महाराष्ट्र की दशा जहाँ का जीवन,
पूना का प्राणाधार तिलक था धी-धन।
वाचक! अवलोको ज़रा हुई है कैसी!
होती है पक्ष-विहीन विहग की जैसी।

(२)

माता का मञ्जुल लाल प्रकृष्ट प्रवासी,
छाया है उस पर आज अपूर्व उदासी।
देखो तो वह शिव-दुर्ग सिंहगढ़ सूना,
नृत्यस्थल ललित निसर्ग-नटी का पूना!

(३)

हरती है मन को नहीं सघन हरियाली,
छूती है चित्त न कहीं छटा छविवाली,
वे सुधा-धार से स्रोत गर्जन्-जल-निर्झर,
वे विमल मलहरी झील, जलद-दल निर्भर।

१ बुद्धि। २ शिवाजी। ३ लोकमान्य गर्मियों में सिंहगढ़ ही रहा करते थे। ४ चाँदी। ५ बहुत से।

(४)

वह वीर शिवाजी रचित † दुर्ग की माला,
वह करती निशा-विनोद विविध विधु[1]-बाला,
वह सरस सरों मे खड़ी प्रफुल्लित नलिनी,
वह नव-उपत्यका[2]-कुञ्ज देह-दुख-दलिनी।

(५)

वह शुभ सन्ध्या का दृश्य और वह ऊषा,
वह सुमन-मण्डिता मञ्जु भूमि की भूषा।
वह-खग-मृग-केलि-स्थली शस्य[3] से श्यामा,
कोई भी तो है नहीं नयन-अभिरामा[4]।

(६)

"छः वर्षों में वह वृद्ध न बच सकता है,
आचार्य विना दुर्व्यूह न रच सकता है।"
थी दावर जज को यही पूर्णतः आशा,
"होगी जनता बस बाल-वियोग-हताशा।"

(७)

लौटे थे चौदह वर्ष विना सङ्कट के,
रावण का वध कर राम समर में डट के।
त्योंही भारत का तिलक लौटकर आया,
बालारुण[5] ने की छिन्न क्षपा[6]-तम-छाया।

† राजगढ़, पन्हालगढ़ आदि। १ चाँदनी। २ घाटी। ३ अन्न। ४ आनन्ददायिनी। ५ बाल सूर्य। ६ रात।

(८)

राष्ट्रिय सेना का दादा कमर कस आया,
लो, परपक्षी के लिए रौद्ररस आया,
गीता का करके मनन, वगत्मा आया,
जो था राजस्वी वीर, महात्मा आया।

(९)

पाकरके स्वयं रहस्य रहस्ये बताया,—
"है कर्म-योग के लिए सदा यह काया।"
वह अद्भुत गीता-भाष्य स्वतन्त्र बनाया,
जो सदियों से था नहीं दृष्टि में आया।

(१०)

उस ने नवजीवन-ध्येय नवीन दिखाया,
जिस पर न पड़े परकीय केतु की छाया।
वर जन्मभूमि—जाह्नवी—प्रवाह बहाया,
जिस में राष्ट्रीय विचार-स्रोत उमड़ाया।

(११)

रुकती न राष्ट्र-गति कहीं एक जन खोके,
चलते चिरकाल न कभी धूर्त के धोके।
नूतन आत्माएँ सतत जन्म हैं लेती,
होते ही खाली पोत्र अर्हं दे देती।

१ गीतारहस्य। २ गङ्गाजी। ३ सहायता।

(१२)

नव नेताओं ने धुरी तिलक के रथ की,
धारणकर, पकड़ी गैल वही नय-पथ की ।
छः वर्षों मे थे हुए विपुल परिवर्तन,
था हुआ क्रान्ति का किन्तु समर्थ समर्थन ।

(१३)

थी उठी विश्व में गूँज आत्म-निर्णय की,
योरप में दगती दिखी तोप दुर्नय[1] की ।
† यों श्रीगणेश हो गया महाभारत का,
आ गया युगान्तर-काल अहा ! भारत का ।

(१४)

सम्बन्ध हुआ था छिन्न छः बरस यद्यपि,
रहती थी बुद्धि सजीव तिलक की तद्यपि ।
थी पुरोगामिता[2] प्राप्त उन्हें प्रज्ञा[3] की,
त्यों सु-स्मृति सदा सचेत, सु-प्रतिज्ञा की ।

(१५)

आते ही उस ने उठा होमरूल[4]-ध्वज,
ली चढ़ा चाव से शीश मातृ-पद की रज ।
फिर महाराष्ट्र में संघ-सङ्गठन द्वारा,
आन्दोलन करके आर्य वीर ललकारा ।

१ कुटिलनीति । † ४ अगस्त, १९१४ ई० । २ आगे आगे चलना ।
३ बुद्धि । ४ स्वराज्य । ५ स्वराज्य-सघ ।

(१६)

नवयुवक-वर्ग को सुना सुना रण-कड़खे,
था लगा चढाने तेज-तोप के चरखे।
तब हुई वीर-रस-मत्त बढी वह ध्वजिनी,
नलिनी पर जाती यथा मदमती गजिनी।

(१७)

भारत सुभटों ने वहाँ रण-प्राङ्गण में,
देखा वीरत्व विशेष न गौराङ्गण में।
जर्मन के जाकर वहाँ छुडाये छक्के,
योरप के योधा हुए देख भौचक्के।

(१८)

आये वे विजयी वीर यहाँ दृग खोले,
बढ़ गया आत्म-विश्वास देश-जय बोले।
तिलकोपदेश था यही, "समर में जाना,
है क्षात्र-तेज के मूल-तत्व का पाना।"

(१९)

थी होमरूल-हुङ्कार गगन में व्यापी,
यों यत्नशील था तिलक—प्रताप प्रतापी।
"जन्माधिकार है होमरूल ले लूँगा,
साधूँगा सन्धा सहज आत्म—बलि दूँगा।"

१ सेना। २ हथिनी। ३ यूरोपीय रणक्षेत्र। ४ प्रतिज्ञा।

(२०)

थे यों स्वराज्य-रणनाद निरन्तर सुनते,
सब ही स्वदेश-स्वातन्त्र्य-युक्ति थे गुनते।
देखा बढ़ते इस भाँति स्वराज्यान्दोलन,
था डिगमिग हुआ तुरन्त शक्ति-संतोलन[1]।

(२१)

‡ वे बेलगाँव-व्याख्यान— स्वत्व की माँगें,
सुन जिन्हें शुद्ध जातीय भाव नव जागें,
जो थे सुविचार-प्रपूर्ण, सुबोध, शुभङ्कर,
थे मजिस्ट्रेट को हुए प्रबल प्रलयङ्कर[2]।

(२२)

उन पर चालीस सहस्र जमानत माँगी,
निर्भीक तिलक ने नहीं किन्तु वह हाँगी[3]।
करके अपील निर्मुक्त हुए जज द्वारा,
आन्दोलन की थी वैध[4] सिद्ध यों धारा।

(२३)

अब हुआ ऐक्य-आधार-स्वरूप समुद्भव,
¶ लखनऊ नगर में राष्ट्र-सभा का उत्सव।
† सूरत से सूरत मलिन हुई थी जिस की,
छुट छद्म-छुरी ने देह छुई थी जिस की।

१ समता (Balance)। ‡ बेलगाँव, नगर। २ प्रलय करनेवाले। ३ स्वीकार की। ४ विधिपूर्वक (Constitutional)। ¶ १९१६ ई०। † १९०७ ई०।

(२४)

फिर देख सुतों में सुमति सजीव हुई वह,
आनन्दोत्फुल्लित-नयन अतीव हुई वह।
बिछुड़ा बहु दिन का तिलक गोद मे आया,
मानो अब उस ने राज्य-तिलक ही पाया।

(२५)

मिल *गरम*, *नरम* दो धार जह्नु-रवि-तनया,
प्रकटाकर पुण्य-प्रवाह वढ़ी वर वलया।
मुसलिम धारा मिल बनी अनूप त्रिवेणी,
भारत के राष्ट्रिय-स्वत्व-स्वर्ग की श्रेणी।

(२६)

जो थे परकीय स्वकीय वही अब होकर,
सब मनोमलिनता दिव्य धार में धोकर।
हो मंत्र-पूत स्वातन्त्र्य-सत्र रचते थे,
पावन शासन के प्रकृत पत्र रचते थे।

(२७)

थे *तिलक-बिसेण्ट*-प्रयत्न एकता-कारण,
हिन्दू-मुसलिम का हुआ विवाद-निवारण।
जो बातें ही थीं हुई कार्य मे परिणत,
होता है अर्थ-अभीष्ट ऐक्य से अधिगत।

१ गङ्गा यमुना। २ पराये। ३ अपने। ४ यज्ञ। ५ कांग्रेस-लीग-स्कीम। ६ बदली हुई। ७ प्राप्त।

(२८)

कहते थे तिलक सदैव, और कुछ मत दो,
केवल स्वराज्य दो हरे ! हृदय, हिम्मत दो।
कर लेंगे सभी सुधार इसी से हम तो,
परवाह नहीं यदि आज किसी से कम तो।

(२९)

† देखी वह मञ्जुल मूर्ति मञ्च पर आई,
मण्डप में मानो प्रभा प्रकट हो छाई।
था मानव-मुकुट मनोज्ञ मान-मणि-मण्डित,
वृद्धा का श्रद्धा-लकुट अनूप अखण्डित।

(३०)

वह शब्द-सार सी सारगर्भिता वाणी,
होती थी उर के पार परम कल्याणी।
थे मञ्जुल मोती दिव्य ज्योति के झड़ते,
वर्षा सी कर वे श्रवण-सीप में पड़ते।

(३१)

राष्ट्रीय सभा का रङ्ग-मञ्च था रञ्जित,
था देख अचिन्तित मेल, विपक्ष विभञ्जित।
वह असहयोग-अवतार *महात्मा गाँधी*,
जिस ने अब रण के हेतु कमर है बाँधी।

† लखनऊ मे १९१६ ई०। १ मनुष्य। २ तत्वपूर्ण। ३ जिसका पहले ध्यान भी न आया हो।

(३२)

मिल मालवीय भी मेल-वेल का माली,

श्राचार्यर, विपिन, सुरेन्द्र, शास्त्रि नय शाली,

सब कार्य-क्षेत्र में एक साथ जब कूदे,

थे लगे शक्ति के हृदय धड़क के हूदे।

(३३)

देखी स्वराज्य की घोर घुमड़ती भारी,

उन्नत उमङ्ग की घटा उमड़ती न्यारी।

कर दिया प्रवाहित तभी प्रभेद-प्रभञ्जन,[3]

श्रा दिया वंचन[4] का दान दरिद्र-हगञ्जन।

(३४)

जिस से नरमों के नेत्र नींद ले झपके,

टपकाकर लोलुप लार लोभ में लपके।

आते अवलोक सुधार समीप गिरे वे,

योजना-युक्ति[5] से फड़क तुरन्त फिरे वे।

(३५)

उस में कुछ टुकड़े देख हर्ष से फूले,

वे भूखे भारत-भक्त भक्ति में भूले।

कह दिया तिलक ने त्वरित 'निराशा[6] जननी—

योजना अशान्तोपँदा[7] हृदय की हननी।"

१ श्री० विजयराघवाचार्य। २ मा० श्रीनिवास शास्त्री। ३ आँधी। ४ राजकीय घोषणा (१९१७ ई०)। ५ मौण्टफोर्ड-रिफार्म-स्कीम (१९१९)। ६ Disappointing। ७ Unsatisfactory।

(४०)

थी रँगरूटों की माँग समर-हित भारी,
आशा थी आश्रित भरत-भूमि पर सारी।
भारत–वीरों में हुई विजय प्रतिलक्षित,
इन से ही तो था हुआ ¶ फ्रांस-तनु-रक्षित।

(४१)

संप्राप्त न तो भी स्वत्व¹-साम्य का पद था,
योरप को अब भी श्वेत²-श्रेष्ठता-मद था।
थे तिलक न अवसर कभी चूकनेवाले,
निर्भय थे कुछ भी कहे रुकनेवाले।

(४२)

"है मान-हानि देश की इस तरह जाना,
टुकड़ों पर हो रँगरूट शीश कटवाना।
यद्यपि है हम को इष्ट न्याय की निष्ठा,
प्यारी प्राणों से तदपि स्वदेश-प्रतिष्ठा।

(४३)

जाओ रण मे, यदि मान-दान तुम पाओ,
भाड़े के टट्टू बने न देश लजाओ"
देते थे यह उपदेश तिलक निर्भय हो,
"चिन्ता न करो कुछ भी कि अजय वा जय हो।"

¶ घोर सङ्कट मे भारतीय वीरों ही के पहुंचने से फ्रांस की प्राण-रक्षा हुई थी। १ अधिकारों की समानता। २ गोरापन।

(४४)

"अपमान-सहित मत राज-भक्ति मे भूलो,
कोरे वचनों पर व्यर्थ न मन मे फूलो।"
देते थे शिक्षा स्वय समर की पहले,
उन के इस मत से चौंक दीन-दिल दहले।

(४५)

कहता था कोई इसे उपद्रव-शिक्षा,
थी इष्ट किसी को बस स्वराज्य की भिक्षा।
बल था किस में जो कहे कि, "करो परीक्षा,
लो इष्ट सहाय, परन्तु स्वराज्य-समीक्षा—

(४६)

समता, सम्मान समान हमारे हित हो,
भारत-सिंहासन शुभ्र स्वतन्त्रस्थित हो।
भट पाँच सहस्र स्वतन्त्र अकेला दूँगा,
पर कब? तब, जब समदृष्टि-वचन ले लूँगा।

(४७)

दूँ दण्ड पचास सहस्र न कहता वैसे,"
भेजा गान्धी को चैक[१] वचन कह ऐसे।
क्या सभी सुरों को गरल सहज था पीना?
खोलेगा केवल शूर समर में सीना।

[१] अपनी वचन-पूर्ति का सत्यता-स्वरूप तिलक ने ५०००८) का चैक महात्मा जी के पास भेज दिया था।

(४८)

गान्धी जो कहते आज, 'स्वदेश-सिपाही,
सरकारी-सेवा छोड़ बनें उत्साही।'
उस काल उन्हें थी ब्रिटिश-न्याय में श्रद्धा,
थी तभी तिलक को वहाँ अखण्ड अश्रद्धा।

(४९)

कहते थे, "यदि पड़ गई देगची ठण्डी,
सदियों में लेगी ताव शिथिल हो चण्डी।"
आती कोई ही लग्न सुयोग-सुयुक्ता,
लाती कोई ही लहर मनोरथ-मुक्ता।

(५०)

दिखलाता पथ इस भाँति दीर्घदर्शी[1] था,
यों उस का तर्क स्वतंत्र तलस्पर्शी था।
उस लोकमान्य में लोक-भक्ति दिन दूनी,
बढ़ती ही गई सशङ्क-भाव से सूनी।

(५१)

सेवा के सरस रसाल[2] रम्य की राजी[3],
जनता-जीवन से सिक्त[4] फलित हो आजी।
उन्मुक्त[5] हुआ सर्वत्र लोक—हृदयासन,
उस हृदय-राज के लिए शुभ्र सिंहासन।

१ दूर को देखनेवाला। २ आम। ३ पंक्ति। ४ सींची गई। ५ खुला हुआ।

(५२)

चुन राष्ट्र-सभापति रखा तिलक शिर ऊपर,
गौरव-गिरि मानो भक्ति-भाव की भू पर।
उत्सुक थे साठ करोड़ नेत्र कब देखें,
राष्ट्रिय-मञ्चस्थ मनोज्ञ बाल-छवि लेखें।

(५३)

पूजें पावन पद-पद्म सुनें वह गर्जन—
पतितों का प्राण, प्रचण्ड तेज-मय तर्जन,
जन्माधिकार का तत्व, शक्ति-संघोषण,
भारत की प्राण-विहीन प्रजा का पोषण।

(५४)

यों आशा का आनन्द सभी जन पाते,
थे स्वागत के सज साज समस्त सिहाते।
पर कर्मवीर कब रहे सुयश के लोभी?
कर्तव्य करेंगे मान न हो, वा हो भी।

(५५)

पाकर भी गुरु सम्मान न ठहरा त्यागी,
मानापमान के लिए विचित्र विरागी।
† करके *शिरोल* ने तिलक-पक्ष की निन्दा,
राष्ट्रिय दल के शिर दिया दोष का विन्दा।

१ (१९१८ ई०)। † सर वैलेण्टाइन शिरोल की इण्डियन अनरेस्ट नामक पुस्तक में राष्ट्रीय पक्ष को दोषी बताते हुए लोकमान्य के चरित्र पर व्यक्तिगत कटाक्ष किये गये हैं।

(५६)

उस ने अशान्ति का जनक[1] पक्ष वह माना,
त्यों चरित-वाच्यता[2]-तीर तिलक पर ताना।
गिनते सम्भावित[3] सदा अयश को मरना,
होना चुप ऐसे समय समझते डरना।

(५७)

यों आशाङ्कुर के दिव्य दलों को दलकर,
भूलें फैलाकर बाह्य जनों को छलकर,
करना था जागृति-मूल-नाश की रचना,
आवश्यक था इस जटिल[4] जाल से बचना।

(५८)

यद्यपि जनता का प्रेम-पुष्प शिर धरने,
राष्ट्रीय-मञ्च का अङ्ग चमत्कृत करने,
दिल्ली को दे सम्मान—राजधानी को,
करना था परम पवित्र कर्म-ज्ञानी को।

(५९)

पर, माँ का मान महान दृष्टि के आगे,
रहता था जिस के लिए सर्व सुख त्यागे।
माता के यश पर जहाँ कालिमा देखी,
मानी के मुख पर वहीं लालिमा देखी।

१ पिता। २ चरित-निन्दा। ३ यशस्वी। ४ पेचीदा।

(६०)

बढ़ता था वीर सवेग कलङ्क मिटाने,
लपठों के लूले तर्क-वितर्क लिटाने,
उस काल न रुकता मिले इन्द्र का पद भी,
रोके अजय्य-यश-जन्य मतङ्गी[1] मद भी।

(६१)

अतएव वैलायत[2]-गमन अभीष्ट विचारा,
सविनय छोड़ा सम्मान विदेश सिधारा।
उस ब्रिटिश-न्याय की पोल कि जिस की बोली
विश्रुत थी, जाकर वहीं तिलक ने खोली।

(६२)

करके शिरोल पर मानहानि का दावा,
था किया धीर ने शत्रु-पक्ष पर धावा।
जब चढ़ा पोत[3] पर प्रथम पुरुष-पुङ्गव वह,
तोयधि[4] ने उठा तरङ्ग-तुङ्ग-मय-रव वह,

(६३)

स्वागत-हित अपने बाहु विशाल बढ़ाये,
थे श्रीपद-रज-कण रम्य ललाट चढ़ाये।
बढ़ता वज्रायुध[5] देख शैल सम काँपा,
नौकरशाही का हृदय नीति ने नापा।

१ हाथी का सा। २ इँगलैण्ड। ३ जहाज़। ४ समुद्र। ५ इन्द्र।

(६४)

रोका लङ्का मे उसे डालकर बाधा,
कर 'पासपोर्ट'[1] को मना स्वार्थ कुछ साधा।
पर पीछे से कुछ सोच 'पास' था भेजा,
रहता सदोष का सदा सभीत कलेजा।

(६५)

रक्खी थी फिर भी शर्त्त, "न भाषण देना,
आन्दोलन मे जा वहाँ विभाग न लेना।"
पर, थे नैय्यर[2] निर्मुक्त[3], वाल क्यों बन्दी ?
हो विवश, त्यागनी पड़ी नीति वह गन्दी।

(६६)

जब ब्रिटिश द्वीप मे दृष्टि पड़ी वह मुद्रा,
थी दूर, दूर से बनी भावना क्षुद्रा।
उस ओजस्वी का अभय नाद जब गूँजा,
सर्वत्र हुई तब विशद-बुद्धि की पूजा।

(६७)

बह चली देश की करुण-कथा की धारा,
थी 'साधु ! साधु !' ध्वनि उठी श्रमी-दल[5] द्वारा।
अभियोग उधर था विषम वैरि-दल के प्रति,
तो भी थी इधर अमन्द[4] राष्ट्र-कृति की गति।

१ विदेश जाने के लिए सरकार का स्वीकृति पत्र। २ श्री० नैय्यर मदरास में ब्राह्मण अब्राह्मण भेदनीति के नेता थे। ३ आज़ाद। ४ गहरा। ५ मज़दूर दल।

(६८)

भारत-सरकार सहाय सबल थी देती,
गोरे तन का प्रत्यक्ष पक्ष थी लेती।
† सरकारी पत्रों का था पूर्ण सहारा,
तिस पर सहायता एक *सिविलियन* द्वारा।

(६९)

इतने पर भी थे तिलक-विजय के लक्षण,
करना था पर गौराङ्ग-गर्व का रक्षण।
"जीते जो तिलक, प्रभाव पड़ेगा घातक,
जो है भारत-सरकार-प्रतिष्ठा-पातक।

(७०)

गोरी गरिमा पर चढ़ी कहीं कृति काली,
तो बच न सकेगी ब्रिटिश-जाति की लाली।"
ज्यूरी को जब यह भेद विचित्र सुझाया,
ममता ने समता-चक्र विरुद्ध घुमाया।

(७१)

पाया निर्णय प्रतिकूल स[illegible] ने जाना,
आकाश-कुसुम है न्याय वि[illegible] से पाना।
पर लोकमान्य की चि[illegible] लात्त थी न्यारी,
निर्मम[1] थे, यदि था [illegible] शै परिश्रम भारी।

† शिरौल को सरकारी का[illegible]द्य [illegible]ने को मुफ्त मिलते थे, और भारत सरकार का सिविल सर्विस का एक अधिकारी इंगलैण्ड में उस की सहायता करता था। १ चिन्ताहीन (Indifferent)

(७२)

व्यय-भार उठा अब महाराष्ट्र[1] ने सारा,
था प्रेम-प्रदर्शन किया कार्य के द्वारा।
पहले ही थे वे वहाँ लीग के प्रतिनिधि,
आन्दोलन की अब लगे सोचने नव विधि।

(७३)

'*इण्डिया*'[2] पत्र को बना सजीव अनिष्क्रिय,
देकर प्रचार को ओज किया लोक-प्रिय।
कमिटी को था कर दिया पुनर्जीवित ही,
दे स्वयं विशद व्याख्यान उन्हों ने नित ही।

(७४)

यदि लगी पाँव में चोट बैठकर बोले,
सातङ्क सभी के बन्द नेत्र—पट खोले।
केशों की कथा न श्याम सन्धि में भूले,
त्यों ही थे तिलक न गौर-भूल में भूले।

(७५)

¶ थीं याद *इकन्नी* उन्हें श्रमी-दल की वे,
भारत की गिन्नी बनीं स्वेद जल की वे।
पिघला था *लेवर-पक्ष* देख यह कुदशा,
समझा, है भारत-प्रजा विपन्ना विवशा।

१ महाराष्ट्र की होमरूल लीग। २ ब्रिटिश कांग्रेस कमिटी का मुख-पत्र। ¶ लोकमान्य के वलायत जाते समय १५००० मज़दूरों ने १५००० इकन्नियाँ भेट करके कहा था कि महाराज! वलायत के लेबर पक्ष (मज़दूर दल) से कहना कि ये भारत की गिन्नियाँ है।

(७६)

थी शान्त इस समय महा-युद्ध की ज्वाला,
मित्रों के उर में पड़ी विजय की माला।
अब लिया उन्हों ने विश्व-शान्ति का ठेका,
पैरिषद् की रचना हुई कराने एका।

(७७)

वे वृद्ध गृद्ध चल पड़े कि करके रक्षा,
सारे राष्ट्रों को रचे नीति निष्पक्षा।
पीटा समता का शुभ्र सु-ढोल ढमाढम,
झाड़ीं झड़ियाँ न्याय की झकोर झमाझम।

(७८)

सर्वत्र निनादित नाद भाग्य-निर्णय का,
बतलाता था अब मिला सु-फल नय-जय का:
प्रतिपादित हो चौदहों शर्त *विल्सन* की,
फेंकेंगी जग से खोद मूल अनबन की।

(७९)

भारत के प्रतिनिधि यदपि वहाँ दो भेजे,
जनता ने थे वे किन्तु न यहाँ अँगेजे।
प्रतिनिधि कैसे? सरकार जिन्हें चुनती हो,
जनता जिनकी आवाज़ न कुछ सुनती हो।

१ इँगलैण्ड, फ्रांस, इटली आदि। २ शान्ति-परिषद। ३ अमेरिका के प्रेसीडेण्ट, इन्हीं ने सङ्कट काल मे मित्रों की सहायता कर समता के सिद्धांत की प्रसिद्ध १४ शर्तें बनायी थीं। ४ महाराजा बीकानेर, लार्ड सिंह।

(८०)

थे 'मोहन, तिलक, ईमाम' राष्ट्र के नायक,
राष्ट्रीय-सभा ने चुने स्वभाग्य-विधायक।
सरकार इसे स्वीकार भला क्यों करती?
वह लोक-पक्ष से रही सदा ही डरती।

(८१)

हो लोकमान्य इस भाँति विवश क्या करते?
यों ही अधीन का स्वत्व सबल है हरते।
बटवाकर लाखों ट्रैक्टें दशा समझाई,
पड़ती पर, किस के कान अधीन-दुहाई?

(८२)

तब लिख विलसन को पत्र देश-रुचि दिखला,
था तिलकोद्गार उदार उग्र यों निकला—
"भारत, वह देश कि जहाँ सभ्यता जन्मी,
उकसाकर उन्नति-मूल भव्यता जन्मी।

(८३)

जो रहा तभी सु-समृद्ध सभ्यता धन से,
छूटा था योरप जब कि जङ्गलीपन से;
जो सिद्ध हो चुका अभी प्रसिद्ध लड़ाकू,
हैं उसे लूटते अन्य राष्ट्र के डाकू।

१ महात्मा गान्धी। २ श्री० हसन इमाम। ३ छोटी छोटी पुस्तिकाएँ जिन में भारत की दशा और उस की माँगों का वर्णन था।

(८४)

वह निर्बल होकर आज बेड़ियाँ पहने,
अपने मन की भी बात न पाता कहने।
भारत-मंत्री के मनोनीत[1] वे प्रतिनिधि,
कैसे कर सकते प्रकट लोक-रुचि-गति-विधि?

(८५)

मत-भेद यहाँ है प्रबल 'प्रजा', 'सत्ता' में,
श्रद्धा है किसे *सुधार-पत्र*[2]-तत्ता[3] में ?
परिषद् को इसका मूल रहस्य बताता,
पैरिस[4] जाने को 'पास पोर्ट' यदि पाता।

(८६)

यदि विश्व-शान्ति है इष्ट छोड़ सब चालें,
सब विजयी राष्ट्र प्रधान प्रतिज्ञा पालें।
भारत की तो है माँग सभी से सादा,
रक्षित रखनी है उसे आत्म-मर्यादा।

(८७)

वह अन्य राष्ट्र पर भार गिराता कब है ?
क्या स्वत्व-प्राप्ति भी उसे असह्य ग़ज़ब है?
क्या नर-गृद्धों के लिए मांस की पेशी[5],
भारत ही है, जो सहे विपत्ति विदेशी ?

१ चुने हुए। २ रिफ़ार्म स्कीम। ३ असलियत। ४ लोकमान्य को पैरिस जाने की आज्ञा नहीं मिली थी। ५ टुकड़ा

(८८)

निर्बल को मिल बलवान् इस तरह नोंचें,
निश्चय उन में भी कभी चलेंगी चोंचें।
राज्याभिलाष हो, न हो, किन्तु व्यापारी,
जब होंगे मैत्सर-मग्न, हानि है भारी।

(८९)

साम्राज्यान्तर्गत राज्य मिले क्या भय है?
किस लिए हुई फिर मित्र-सङ्घ की जय है?
पर-शासन मे क्या प्रतिभा कभी उभरती?
फलती क्या उसमें आत्म-भक्ति की धरती?

(९०)

आचार-भ्रष्टता मार्ग अदृश्य बनाती,
है पराधीन देशों मे ही धँस जाती।
होता है नैतिक पतन, शान्ति फिर कैसी?
बढती है बहुधा भ्रान्ति क्षान्ति फिर कैसी?

(९१)

जन्माधिकार के लिए, 'नहीं' का कारण?
पाश्चात्य-प्रज्ञ क्या करें अशान्ति निवारण?
पूर्वीय तत्व का ज्ञान न उनको असली,
चढ़ता है उन पर रङ्ग सदा ही फ़सली।

१ ईर्ष्या। २ ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर। ३ सन्तोष। ४ पश्चिम के विद्वान्।

(१००)

परिवर्तित ही थी हुई समस्त परिस्थिति,
थी नवयुग की हो गई उदग्र उपस्थिति।
तत्काल तिलक ने राष्ट्र-पक्ष-संशोधन
कर डाला, समुचित किया सु-मार्ग-निबोधन

(१०१)

आगे आया नव सृष्ट लोकशाही[2]-दल,
भरता स्वराष्ट्र में भूरि कष्ट-दाही बल।
दो मूल तत्व थे: एक 'लोकमत-श्रद्धा',
दूसरा अटल 'कांग्रेस-प्रीति' संवृद्धा।

(१०२)

थे उस के दो दिव्यास्त्र: 'बढ़ाना शिक्षा',
'मत[3]-दाताओं की वृद्धि', भुलाकर भिक्षा।
'धार्मिक-सहिष्णुता' तथा 'खिलाफ़त-रक्षा',
उस के थे शुभ सिद्धान्त जाति-समकक्षा[4]।

(१०३)

अपने निर्णय का आप सङ्गठन करना,
था उस का ध्येय 'स्वराज्य-योग्यता भरना'।
¶ कांग्रेस कह चुकी थी, कि 'सुधार अधूरे,
नैराश्य-जनक, सन्तोष-शून्य है पूरे।

१ भयङ्कर। २ Congress Democratic Party। ३ वोट देनेवाले।
४ जातीय समानता (Racial equality)। ¶ १९१९ ई०।

(१०४)

था लोक-पक्ष भी इसी नीति का हामी,
लेने अखण्ड सब स्वत्व अग्र-पथ-गामी।
कहते थे तिलक कि, "मिले स्वत्व जो ले लो,
फिर वैध-रूप से बढ़ो जान पर खेलो।

(१०५)

जा जाकर कौन्सिल-मध्य मचा आन्दोलन,
कर दो सङ्गठित समाज, स्वत्व-सम्बोधन।"
इस भाँति भीष्म-प्रण किये समर में उतरे,
पहने परिकर बलिदान-भँवर में उतरे।

(१०६)

"हो कार्य सिद्ध वा अङ्ग विद्ध हो जावे,
माँ की हो पुण्य-प्रसिद्धि, मुक्त-पथ पावे।"
आज़ादी की यों आग धधकती मन में,
उठती थी जीवन-भाफ भभकती तन में।

(१०७)

उस लोकमान्य की वर्ष-गाँठ में हर्षित,
लक्ष्योपहार अब किया लोक ने अर्पित।
दे होमरूल-लीग को किया उर शीतल,
देशार्थ सभी पर रखा त्याग-तुलसी-दल।

१ हिमायत लेनेवाला। २ फंदा। ३ साठवीं वर्ष गाँठ। ४ एक लाख रुपये की भेंट।

(१०८)

कहता था कोई मित्र, "स्वराज्य मिले तो,
आशा की कलिका कलित प्रफुल्ल हिले तो,
हाँ, तिलक! तुम्हें तब कौन प्रीत-पद होगा?
क्या 'प्रजातन्त्र-पति' नाम प्रीति-प्रद होगा?"

(१०९)

उस काल उमड़ती थी विद्यार्जन-सरिता,
होती थी प्रज्ञा-कली हृदय में हरिता।
सुनते थे सहसा अहा! विनय-वाणी क्या?
होते थे जिस से द्रवित अचर, प्राणी क्या?

(११०)

"स्वाधीन देश को देख शान्ति पाऊँगा,
गणिताध्यापक हो कहीं चला जाऊँगा।
माता के मठ में बैठ सीख कुछ विद्या,
मेटूँगा, यदि हो सका, अशेष अविद्या।"

(१११)

"देखूँगा अपने देश-बन्धु सुख पाते,
मानूँगा जीवन धन्य इसी के नाते।"
यह त्याग! अटल अनुराग!! विराग!!! विलोको,
फिर जाग, उठा जय-राग स्व-भाग विलोको।

अष्टम सर्ग

(निर्वाण)

(१)

पाठक ! यहाँ बलिदान-वेदी है तुम्हें बस देखनी,
हा ! हृदयद्रावक दृश्य वह कैसे लिखेगी लेखनी ?
जो कर्म-प्राङ्गण में बढ़ी अब तक चली थी ललकती,
चलती न अब शोकाश्रु से है आँख उस की छलकती।

(२)

पर, कर्मयोगी के चरित ने कर्म-गीता को सिखा,
है धर्म-मर्म-महत्व उस के चित्त-पट पर भी लिखा।
अतएव चरित-समाप्ति-हित निज कर्म करती जायगी,
देकर जलाञ्जलि ही हृदय का ताप हरती जायगी।

(३)

नर-केसरी का रण-कवच था ही कलेवर पर चढ़ा,
वह वैरि-व्यूह-विभङ्ग-हित सन्नद्ध होकर था बढ़ा।
संग्राम शङ्ख-ध्वनि शिविर में सुन पड़ी थी सैन्य को,
दुतकार दे देशीयता ने था भगाया दैन्य को।

(४)

अस्वस्थता ने नीड़[1] अपना था बनाया अङ्ग में,
वह डालने को चल पड़ी अब भङ्ग रण-रस-रङ्ग में।
पर, वृद्ध होते भी विलोका युवक-साहस सङ्ग में,
सङ्कल्प में न विकल्प पड़ता था तिलक को जङ्ग में।

(५)

देता न जीर्ण शरीर यद्यपि साथ था सुस्फूर्ति का,
था तदपि विद्युंद्रल[2] दिलाता दर्श माँ की मूर्ति का।
वह शुभ्र स्वाधीना उन्हें थी दृष्टि पड़ती पास ही,
परतन्त्रता का था प्रतीत हुआ उन्हें ध्रुव ह्रास ही।

(६)

इस काल फिर उठती लखी काली घटा † कोल्हापुरी,
प्रकटी पुनः नव रूप लेकर ही प्रकृति वह आसुरी।
वादी[3] बना दरबार लादी शीश पर निर्लज्जता,
आदी[4] तिलक में थी परन्तु सदैव सङ्कट-सज्जता।

(७)

सरदार-गृह में ठहरकर अभियोग में थे लीन वे,
त्यों लोकसेवा भी वहीं लेकर रहे मतिपीन वे।
संशप्तकों ने द्रोण से कर पार्थ[5] दूराकृष्ट क्या ?
टाला दुराचारी जयद्रथ का कहो दुरदृष्ट क्या ?

१ घोंसला। २ बिजली की सी शक्ति। † ताई महाराज का मुक़द्दमा फिर से लड़ाया गया; इस बार दरबार मुद्दई बना था। ३ मुद्दई। ४ जिसे आदत पड़ गई हो। ५ अर्जुन।

(८)

रुकता, परन्तप[1]-तीर से उस का शिरच्छेदन, भला ?
थी व्यर्थ त्यों ही तिलक-रिपुओं की यहाँ भेदन-कला।
देखे विशुद्ध-चरित्रता की केतु[2] लेकर वे खड़े,
पामर प्रतिद्वन्द्वी पुन. पाये पराजित ही पड़े।

(९)

रिपु-कुञ्जरों की ओर था सिंहावलोकन ही सदा,
निर्भय निरन्तर घूमती उन की रही गौरव-गदा।
घिरती सघन घन श्याम की घरघोरकर ज्यों ज्यों घटा,
चढ़ती न उस को चीरकर क्या चौगुनी चन्द्रच्छटा ?

(१०)

निर्मल नभस्थल में न था अत्र विघ्न-बादल का पता,
उलही समुज्वल सिद्धि-सूर[3] विलोक थी आशा-लता।
† निर्मुक्त हो उद्भट-भुजा फड़की प्रविक्रम के लिए,
अविराम वज्र-स्वरूप की जो शत्रु-सम्भ्रम के लिए।

(११)

जन-सैन्य में सोत्साह सब सामान पूजा के सजे,
जिस की छटा अवलोक अमरप[4] लुब्ध थे लोकप लजे।
शुभ ¶ जन्म का उत्सव महाराष्ट्रीय जनता ने मना,
डाली तिलक के कण्ठ में थी मान-मणि-माला बना।

१ अर्जुन। २ ध्वजा। ३ सूर्य। † कोल्हापुर केस का निर्णय लोकमान्य की मृत्यु के ८, १० दिन पहले ही हुआ था। ४ इन्द्र। ¶ ६४ वी वर्षगाँठ।

(१२)

दे निकटवर्ती नगर कोलावा निमन्त्रण प्रीति से,
था चरण-सेवा का समुत्सुक शोभनीय सुरीति से।
†साग्रह तिलक को फरफराती मञ्जु मोटर ले गई,
भवितव्य के मन्तव्य को अनुकूल अवसर दे गई।

(१३)

सानन्द, सविध समाप्त थी शुभ कर्म की सब रीतियाँ,
मानस-भवन मे प्राप्त थीं '*बलवन्त*' की गुण-गीतियाँ।
उस काल श्रीमुख से वहाँ थे जो वचन-मुक्ता झड़े,
थे श्रवण-सीपों में सुधा के बिन्दु ही मानो पड़े:—

(१४)

"जीवन-दिवस अपने अधिक होते प्रतीत मुझे नहीं,
आश्चर्य क्या ? जीर्णाङ्ग[1]-रथ हो भग्न सङ्गर[2] में कहीं।
है कामना केवल यही जीवित स्वराज्य तुम्हें मिले,
मेरे गमन के पूर्व पूर्व-प्रभुत्व[3]-पद्म-प्रभा खिले।"

(१५)

जिस ने पलोटे पूज्य पद वह भूरि भागी था वहाँ,
किस को पता था दर्श त्यागी का किसे फिर हो कहाँ ?
सन्ध्या वही भाग्यान्त सन्ध्या थी, किसे अनुमान था ?
रजनी[4] वही आनन्द-वन्ध्या थी, किसे यह ज्ञान था?

† २३ जौलाई १९२० ई०। १ बुड्ढे शरीर का रथ। २ युद्ध। ३ प्राचीन गौरव। ४ रात।

(१६)

था जानता ही कौन कृत्या-वाहनी वह कार थी,
पापी प्रभञ्जन की प्रगति जिस में चली न विचार थी।
हा! मार्ग ही मे काल ने छिप शीत-शर छोड़े वहाँ,
ज्वर ने जरा-जर्जरित तनु के जोड़ भिड़ तोड़े यहाँ,

(१७)

सरदार-गृह-शिखरस्थ शोभी सान्ध्य शोभा की घटा
अवलोकते रहते जहाँ थे तिलक नैसर्गिक छटा।
रङ्गीन गच पर गिर कलाधर की कला उन्मादिनी,
थी व्यक्त करती विविध वर्णी वर विभा आह्लादिनी।

(१८)

उस रत्न-रञ्जित फ़र्श पर योगी तिलक के चरण ले,
आती अहो! किस भाँति थी अर्चादि के उपकरण ले।
करती विमल भावाभिषिक्त सु-भावना की भूमियाँ,
उठती सु-लोल कलोल करती थीं उदधि मे ऊर्मियाँ।

(१६)

रहती सुछवि थी रम्य सागर-तट 'अपोलो' पर खड़ी,
प्रतिकाल प्रतिमुख थी जहाँ संशुभ्र पोतों की लड़ी।
जब देखते थे देश के, सम्पत्तिहर जलयान वे,
करते सदा थे शूरमणि *शिवराज* का तव ध्यान वे:

१ मृत्यु। २ मोटरकार। ३ हवा। ४ शाम की। ५ चन्द्रमा। ६ मस्त। ७ प्रसन्न करने वाली। ८ सामान। भावों मे नहाई हुई। १० लहरे। ११ अपोलो बन्दर सरदारगृह के पास ही है। १२ जहाज़ों।

(२०)

"वह वक्ष वारिधि का जहाँ जङ्गी जहाजों से सजा,
बेड़ा शिवाजी का उड़ाना था अहो! आर्य-ध्वजा।
रक्खे विदेशी-सैन्य-पद सहना सदा ही भार है,
इस पतन-पारावार का कुछ भी न वारापार है!

(२१)

रहता ब्रिटिश बेड़ा यहाँ जिन की सुरक्षा के लिए,
उन को सुयोग न प्राप्त है नौ-सैन्य-शिक्षा के लिए।
वे मन्दमति तो तैरना तक भी नहीं हैं जानते,
है पशु-रक्षा को हरे! सौभाग्य अपना मानते।"

(२२)

फिर सोच सोच स्वराज्य का सामीप्य सुख पाते कभी,
राष्ट्रिय चमू की कल्पना से हर्ष उर लाते कभी।
जाते जभी थे शयन-शय्या पर यही थी प्रार्थना,
"भगवान्! भारत को बना स्वाधीन दो अब सान्त्वना।"

(२३)

शय्या वही, रजनी वही, सरदारगृह भी है वही,
पर, ताप-तिमिरोच्छन्न हो वह बन रहा विपदा-मही।
विकराल वदना हो बढ़ी सामान्य ज्वर-ज्वाला वही,
जन्मी समीरणों-शीत से जो मृत्यु की माला वही।

१ समुद्र। २ समुद्र की सेना (Navy)। ३ निकटता। ४ अन्धकार से ढका हुआ। ५ हवा की ठंड।

(२४)

दो तीन दिन बीते सभी सद्वैद्य उत्तर दे गये,
चिन्तित सभी के दृष्टि तब पड़ने लगे लोचन नये।
सम्बन्धि जन को देख व्याकुल आप ही आश्वास दे,
कहते कि, 'हूँगा स्वस्थ, रोग भले मुझे कुछ त्रास दे।

(२५)

अब तक रहा जीवित यहाँ मै एक इच्छा-शक्ति से,
त्यों ही मरण मुझ को मिलेगा एक आत्म-विरक्ति से।'
यों वीरवत् संग्राम यद्यपि मृत्यु से वे कर रहे,
पर, शेष जीवन के नियत कुछ श्वास ही थे भर रहे।

(२६)

यह वज्र¹-वृत्त मिला जभी सर्वत्र छाया शोक था,
करने लगा तब यज्ञ, जप, तप, दान भारत-लोक था।
थीं मन्दिरों मे, मसजिदों में प्रार्थना परमेश से,
"भगवन्! हमारा भाग्य-तिलक न दूर हो इस देश से।"

(२७)

† तब स्वास्थ्य विषयक सूचना थी यदपि छपती प्रति घड़ी,
तो भी सहस्रों की लड़ी थी द्वार पर रहती खड़ी।
थे प्राण सब के उस समय श्रीतिलक जीवन-प्राण में,
निज देश के कल्याण में, सौभाग्य के संत्राण में।

१ वज्र सा कठोर समाचार। † एक एक घण्टे पीछे लोकमान्य के स्वास्थ्य का समाचार छापकर बाँटा जाता था।

(२८)

करके त्रिदोष¹ प्रकोप अब संग्राम अति करने लगे,
हरि-प्रेरणा की पूर्ति-हित वे ज्ञान-गति हरने लगे।
थे तिलक मूर्च्छा-मग्न गीता-पाठ तो भी सुन रहे,
भगवान की भव-चरित-लीलाएँ हृदय में गुन रहे।

(२९)

जे मित्र ने उन को दिखाया चित्र जब श्रीकृष्ण का,
जागृत विलोका ज्ञान² उन के धर्म-नेत्र सतृष्ण³ का।
कहने लगे, "भगवान का यह भव्य अनुपम चित्र है,
त्रैलोक्य अनुकरणीय ही इन का पवित्र चरित्र है।"

(३०)

सर्वेश-श्रद्धा का अहो! कैसा पवित्र प्रभाव है,
रहता इसी से अन्त तक सात्विक सधर्म स्वभाव है।
सद्धर्म लौकिक पारलौकिक विजय का आधार है,
इस के बिना ही विफल होता विश्व का व्यापार है।

(३१)

चारों दिशा से चल पड़े नेता उन्हें अवलोकने,
है कौन पाता काल की विकराल गति को रोकने?
गान्धी चले, *शौकत* चले, थे *लाजपत* दौड़े तथा,
पर सुन सके उन के न अन्तिम वचन कोई सर्वथा।

१ कफ़, पित्त, वायु। २ होश। ३ तृष्णा सहित (Eager)।

(३२)

ज्योंही महात्मा आ वहाँ शय्या-समीप खड़े हुए,
देखा पुरुष-मणि को महानिद्रा-निमग्न पड़े हुए।
आँखें खुलीं, मुख खिल गया, 'कब आप आये?' यों कहा,
कुछ और कहते थे कि रसना में न था फिर रस रहा।

(३३)

वाणी विवश उस काल थी उस वीर-पुङ्गव की रुकी,
थी वक्त्र[1]-मण्डल पर अहो! चिर शान्ति की छाया झुकी।
वह दृष्टि द्वारा देश का नेतृत्व दे चुप होगई,
वा सौंपकर सारी धरोहर थी तिरोहित[2] हो गई।

(३४)

कह—'कर्म अपना कर चुकी फल का मुझे अधिकार क्या?
सर्वेश के आदेश-पालन में विरुद्ध विचार क्या?'
वह मौन मुद्रा[3] मौन भाषा में मनोगत[4] भाव से,
थी मौन मोहन[5] को बताती मर्म आत्म-प्रभाव से।

(३५)

उस भाव को रखकर उरस्तल में महात्मा म्लान थे,
अस्तग प्रताप-पतङ्ग[6] का वे कर चुके थे अनुमान थे।
वह केसरी-गर्जन-गुहा थी। शान्त शून्यारण्य[7] सी,
अति मन्द भारत-भाग्य की सन्ताप-शाप-शरण्य[8] सी।

१ मुखमण्डल। २ छिपी हुई। ३ चहरा। ४ भीतरी। ५ महात्मा गान्धी। ६ सूर्य। ७ चौपट मैदान। ८ शरण का स्थान।

(३६)

कर वार वार प्रणाम वे उस देव-दुर्लभ देह को,
गान्धी गये मर्म-व्यथित होकर सचिन्त स्वगेह को।
है सूत्रधार स्वराष्ट्र का सङ्कट-समय में जा रहा,
यह ध्यान वारंवार उन के हृदय में था आ रहा।

(३७)

अन्तिम समय के पूर्व था होने लगा कुछ चेत सा,
मानो झलकने लग गया आशा-मही में रेत सा।
पर शीघ्र ही था सिद्ध वह केवल कुरङ्ग-मरीचिका[1],
हो शैल से वा छिन्न ज्यों सुप्रसन्न[2] जीवन[3] वीचि[4] का।

(३८)

दीपक दमक किंवा रहा निर्वाण[5] के कुछ पूर्व हो,
प्रक्षुब्धता[6] के पूर्व ही वा सिन्धु शान्त अपूर्व हो।
विनिपात[7] के पहले चमक किंवा रहा नक्षत्र हो,
वा पहुँच पतझड़ पास कोई पीत सु-प्रभ पत्र[8] हो।

(३९)

था कर्म-योगी यों वहाँ परिवार-मण्डल से घिरा,
देखा गया उच्चरित करता वह सहज पावन गिरा,
जो थी कुरु-क्षेत्रस्थ भट कौन्तेय[9] की भ्रमहारिणी,
सन्मार्ग की विस्तारिणी, सद्वृत्ति की सञ्चारिणीः—

१ मृग तृष्णा का जल (Mirraze)। २ निर्मल। ३ जल। ४ लहर। ५ बुझना। ६ उमड़ना। ७ गिरना। ८ पत्ता ९ अर्जुन।

(४०)

"यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥"

[भारत ! जगत् मे धर्मग्लानि बढ़े विशेष जभी जभी,
उत्थान पाता पाप-पथ, अवतीर्ण मै होता तभी ।
प्रत्येक युग में धर्म का भाण्डार भरने के लिए,
मैं जन्म लेता दुष्ट-दल-संहार करने के लिए ।]

(४१)

फिर, कृष्ण-चित्र को शीश झुका,
वह विमलवृत्ति वागीश रुका ।
दृग-तेज हहह ! उड्डीन हुआ,
उस लीनात्मा में लीन हुआ ।

उपसंहार

(संस्कार)

डूबी है वियोग-वारि-धारा में प्रशस्त पुरी
बम्बई, त्रिलोक-तिलक बाल विना सूनी।
जाती जनता है सरदारगृह ओर खिंची
देखने को, रहता जहाँ विप्र-कुल-केसरी
था देश का मुकुट, हृदयों का सम्राट जो।
ले गया निशीथ[1] में कराल महाकाल उस
नर-मणि को, चोरीकर, सोती जनता के सर्वस्व को।
हिम्मत हुई न उसे आता जो प्रकाश में,
करते अन्धकार ही में काम दुष्ट जन हैं।

१ आधीरात (१२ बजकर ४० मिनट पर)।

ज्यों त्यों कर प्रभात हुआ, लगी पौ फटने।
शोक-प्लावितों को भासमान हुआ मानो
सृष्टि में सदा है यों नियम ही निसर्ग का।
जाते निशानाथ[1] निज धर्म को निबाह कर
आते दिवानाथ[2] साथ सारथी अरुण के,
होता छिन्न तम है, दैत्य-दल हटता।
व्यूह की विशेष गति कर्म निज करके
लेती है विराम, उठती है एक ओर ही
कल्पना, जो होती अनुकूल काल-गति के।
नायक भी नूतन चतुर चतुरङ्गिनी का
रोकता रणस्थली में राष्ट्र-रथ की धुरी।
अब्य गान्धी का रण-शंख-निर्घोष हुआ,
केसरी का गर्जन विलीन वायु-पथ में,
† भूमि उसे दे गया, अहिंसा के सुभट को।
दे दिया धनुष था परशुधर ने यथा
राम को, नृशंस लङ्केश-वध करने॥

चित्र में खिंची सी खड़ी है विषण्णवदना[3]
नर नारियों की राजी[4], दीन दृग सजला,
सरदारगृह सामने, एकटक, मूक सी,

१ चन्द्रमा। २ सूर्य। † १ अगस्त १९२० ई० को असहयोग का आरम्भ दिन था। ३ रंजीदा। ४ पंक्ति।

मानो साँप सूँघ गया मनुजों के खेत को।
उच्च-गृह-चूड़ा पर शव है विराजमान
लोकमान्य का, जिसे आई अवलोकने
असंख्य जन-मण्डली, दूर दूर प्रान्तों से,
पास परिजन हैं, विवर्ण म्लानमुख जो
व्यक्त करते हैं मुद्रा से मर्म-वेदना।
शव सुमनों के कण्ठहार से सजा हुआ,
जान पड़ता है यह जीवहीन कैसे?
दे न रही हो कहीं हमारी दृष्टि धोखा तो!
प्रेम की प्रबलता में देखी गई यही गति,
होता न वियोग की व्यथा से कौन बावला?

आया दानवों के दाँत तोड़ने को उन में
एक दुष्ट-धर्षक अदम्य हठी नेता।
अर्थी सुरों का स्वार्थ-सिद्धि पर उधर हर्ष,
अर्थी इधर उठी शोक-सिन्धु उमड़ा।
आते थे नृमुण्ड ही नृमुण्ड दृष्टि जाती जहाँ,
नेत्र-नीर-धारा से बही थीं वहु सरिता,
उन्हीं के तल-ऊपर सव जाते पलराते थे।
सागर के तट पर था एक अन्य सागर सा
जन-समुदाय। किवा नभ की थी तुलना;
श्याम-घन-माला थी शिरों पर, तो नीचे भी
श्याम शिर आप ही थे एक मेघ-मालिका।
कौन कहेगा कि वारि-धारा के प्रवाह में थी
समता विलोचनों की धारा की तनिक भी ?
दामिनी वहाँ थी, यहाँ यामिनी थी दिन में,
अन्तर यही था प्राण वहाँ, देह यहाँ था।
वेदना किसी की किसी को है हर्ष होती,
विधि की विचित्रता का भेद यह देख लो !

वढ़ता जलूस आया उस चौपाटी में,
करता तरङ्ग-केलि जहाँ सिन्धु-जल था;

१ मतलबी। २ मुर्दे की अर्थी। ३ समुद्र के किनारे पर एक रेतीला स्थान है। यही बम्बई की शाम की विहार-भूमि है।

देख विधु-वदन विलसती थी वीचि-बाला,
शङ्ख-सीप-पुञ्ज छिटकाते थे छटा नयी।
एक ओर राजती थी शुभ्र गिरि-श्रेणी,
सोहता था उपवन जिस में लटकेता,
लोनी लतिकाएँ लपटी थीं वृक्ष वल्लभों से,
पारसी पुजारियों की पास ही थी ,मुर्री[2]—
छूती जो गगन को—थी गृद्ध-गण-शाला।
मन्दिरों के कलित कगूरे स्वर्ण-द्युति से
आभा बरसाते सरसाते थे समीप ही।
मञ्जुल महालय थे चूमते गगन को,
बालुका बिछी थी चारु चाँदी सी चमकती,
मानों मोतियों का चूर्ण कर बिखराया हो।
सामने अनन्त जलराशि थी हरी हरी,
सन्ध्या का समीर बहता था सुमन्द मन्द,
नर नारियों के वृन्द वृन्द थे विहरते।

इसी पुण्य-भूमि पर जन-दल ठहरा।
उतारी वह अर्थी भी *गान्धी* ने, *लाजपत* ने,
श्रीधर[3] ने, *शौकत* ने,

१ Hanging garden। २ Tower of Silence। ३ लोकमान्य के छोटे सुपुत्र।

रामचन्द्र¹, केलकर और खपर्डे ने,
सरला ने और भी अनेक धनी मानियों ने।
'जय जय तिलक' का गभीर घोष गूँजा तब
गद्गद कण्ठ से नभ में, सागर भी हुलसा
पुण्य पद छूने को, कल-कल-ध्वनि से
वन्दना सी करता, लाया रत्न-अञ्जलि
चढ़ाने श्रीचरणों में; अर्घ्य दे तरङ्ग तुङ्ग
तृप्त हुई तत्क्षण।

अछूती चौपाटी (जहाँ मानव-स्मृति में
जला न कोई शव था) धन्य हुई, अङ्क में
लिये शरीर-मणि को, सिहाता सुर-यान रहा
जिसे शिर धरने—पवित्र पीठ करने।
धोया था कलङ्क वहाँ दाह का निदेश दे,
उस नौकरशाही नें जो तिलक तपस्वी के
ठोकती रही थी पद पद पर कीलें।
मान शत्रु-श्रद्धा का आज अनुमान हुआ,
ज्ञान हुआ तिलक तिलक ही के तुल्य था।
सत्य है सभी विमुग्ध होते सद्गुण पर
मन में, भले ही स्वार्थ वश करें कुछ भी।
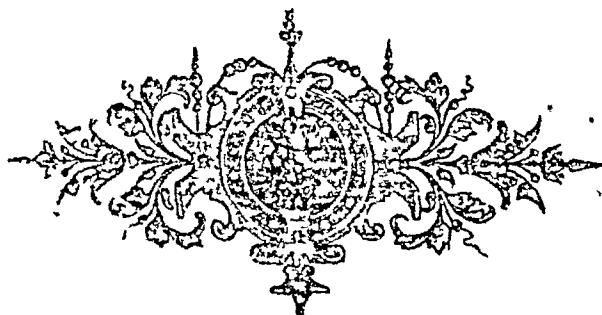
१ लोकमान्य के बड़े सुपुत्र।

धूप-गन्ध आदि युक्त चन्दन-चिता सजी,
सुमनों से मण्डित मनोज्ञ अङ्ग जिस पर
दीप्त हुआ, चारों ओर चारु अयस्तम्भ[1] थे।
आसपास सभी सम्प्रदाय के थे अगुआ,
करते सप्रेम प्रणिपात प्रतिमा को वे
मग्न थे महान त्याग-मूर्ति-गुण-गान में।
देखा श्मशान में किसी ने भूमि-मण्डल पर
मान यों महीप का, मनुष्य का, कहाँ ? कहे।
द्रोही राज-पुरुष, दुराग्रही स्वजन कुछ
कहते जिसे जीवन में, आज उन को ही
भक्ति ने भिगो दिया है, कैसा था उपद्रवी !

शोक न सँभाल सके रवि भगवान भी
अस्त-गिरि-ऊपर विवश वे लुढ़के,
यदपि रहे थे मुख ढाँके दिन में भी।
सन्ध्या की सूचना दी लाल, पीत अम्बरों ने
तिलक-कुमार बढ़े दाह-कर्म करने।
देखते ही, देखते विशाल ज्वाला-जाल ने
डाल दी प्रकाश-माल बाल के वदन पर,
देह था उसे भी अग्निदेव ने उठा लिया,

१ लोहे के खम्भ।
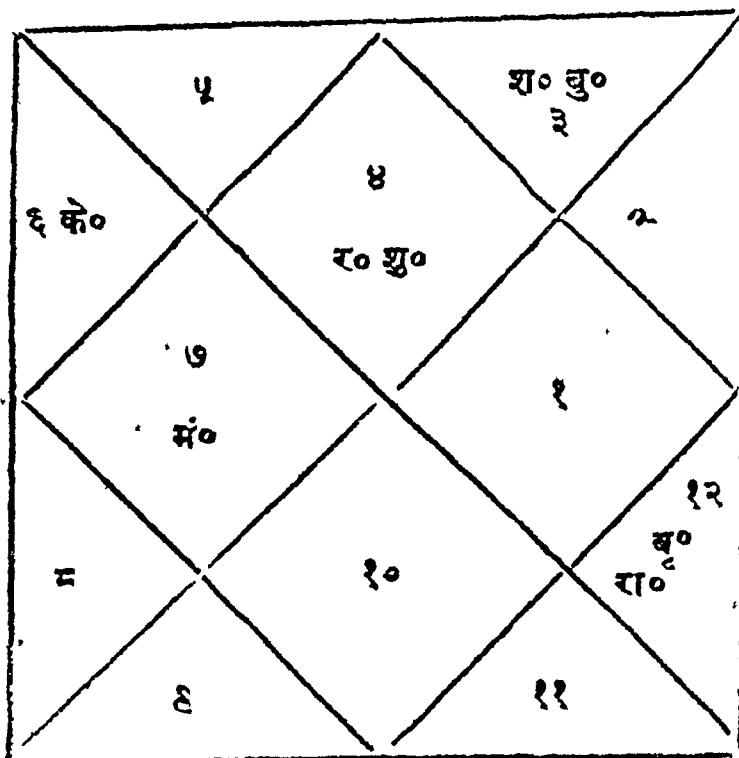
विभूति शेष रह गई, तिलक हाय! धुल गया।
किन्तु, वायु-मण्डल में उन परमाणुओं ने,
जिन में स्वदेश-भक्ति ठूँस ठूँस भरी थी,
फैलकर सौरभ स्वतंत्रता की भर दी,
भारत का वाल वाल बाल-रूप हो गया।

लोकमान्य की जन्म-कुण्डली

शाके १७७८ आषाढ़ मासे कृष्णपक्षे तिथौ ६ सौम्य-वासरे घ० २१ प० २५ उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रे घ० ४ प० ३३ सूर्योदये गत घ० २ प० ५ (२३ जुलाई, १८५६)।

तपस्वी तिलक

के

लेखक

की

अन्य रचनाएँ

समालोचनाओं का सार

प्रणवीर प्रताप

मूल्य पाँच आना

इतिहासप्रसिद्ध, चिरस्मरणीय और अनुपम स्वतन्त्रता-प्रेमी वीर महाराणा प्रतापसिंह का यह नवीन पवित्र चरित्र पद्य में प्रकाशित हुआ है। ध्यान और प्रेम से इसे आद्योपान्त पढ़नेवाला लेखक की कृति को मुक्तकंठ से प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। विषय की गुरुता का तो कहना ही क्या, भाषा खड़ी बोली और कुछ क्लिष्ट होने पर भी ललित और ओजपूर्ण है। कम से कम हमें तो इसकी ८०८ पंक्तियों में कहीं भी शिथिलता नहीं बोध हुई। जिन उच्च भावों को लेखक ने स्पष्ट प्रभावोत्पादकता के साथ प्रकट किया है वे केवल एक देशभक्ति और स्वातन्त्र्य प्रेम से लबालब भरे हुए सच्चे हृदय ही से निकल सकते हैं। भारतमाता का मुख समुज्ज्वल करनेवाले उस प्रातःस्मरणीय महात्मा ने विकट बनों और कठिन गिरि कन्दराओं में अपने स्त्री पुत्रों और भील सरदारों सहित कैसे कैसे कष्ट सहे और कमलमीर, अम्बेर आदि को जीत लेने के बाद भी प्रणरक्षार्थ केवल पर्णकुटी ही में मृत्युपर्यन्त दिन बिताये, उसका संक्षिप्त किन्तु बड़ा विशद वर्णन इसके पाठकों को पढ़ने को मिलेगा।

(इस पुस्तक का तृतीय संस्करण होरहा है।) (अभ्युदय)

या लहानशा हिंदी काव्याची भाषा व छंदहि आचरण्यास सोपा असल्यामुळें कवीच्या कल्पनातरंगा बरोबर वाचक सहज वाहून जातो "मृततुल्य जीवित है जगत में जो कि पर-सेवा करे" हें दृढ निश्चयाचें वचन सतत डोळ्यापुढें ठेवून व राजपुतान्यास भूषणभूत असलेला चितोडगड हस्तगत करून मेवाड प्रांतास स्वातंत्र्याची जोड करून देईपर्यंत कोणत्याहि रहावयाचें नाहीं अशी ज्यानें घोर प्रतिज्ञा केली, व अरण्यांत कंदमूलावर उपजीविका करून आपल्या प्रिय मातृभूमीच्या उद्धाराकरितां रात्रं दिवस ज्यानें उद्योग केला त्या प्रण (प्रतिज्ञा) वीर प्रतापाचें चरित्र कोणाचें अंतःकरण हलवून सोडणार नाहीं ? हिंदी भाषा व विशेषत. तींतील काव्य हीं वीर रसास स्वभावतःच पोषक असल्यामुळें व या पुस्तकांतील काव्याचा छंद हि कवीनें प्रसंगाला अनुरूप असाच घेतला असल्यामुळें शूर व धाडसी कृत्यांनी भरलेलें. हें प्रतापाचें चरित्र वाचकांच्या मनोवृत्ति खात्रीनें तल्लीन करून सोडील.

(मराठी केसरी)

इस में राणाप्रताप का हाल है। स्वाधीनता के लिये वन वन भटक कर जो यातनाएँ उन्होंने सही हैं उनका ओजस्विनी भाषा में सजीव चित्र है। काव्यरचना बहुत ही सरस, सरल किंतु ओज-गुण-पूर्ण है। हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध का वर्णन बहुत ही अच्छा हुआ है। पुस्तक हाथ में लेकर एक बार प्रारम्भ करने से छोड़ने को जी नहीं चाहता। एक से बढ़िया छंद दीखता है। पृथ्वीराज का प्रसिद्ध पत्र ऐसी

उत्तमता से पद्यबद्ध किया है कि पढ़ते ही बनता है। मृत्यु के समय बहुत आग्रह करने पर राणा ने जो कुछ कहा है वह हृदय में करुणा का पहाड़ खड़ा करदेता है।

(धर्म समाज एजूकेशनल मैगज़ीन)

गान्धी--गौरव

मूल्य १२ आना

इसका आकार मँझोला, पृष्ठ संख्या १६०, छपाई और काग़ज़ उत्तम, और मूल्य १२ आने है। यह १० सर्गों का काव्य है। श्रीयुत मोहनदास कर्म्मचन्द गांधी के गौरव के वर्णन से गौरवान्वित है। इस पुण्य-श्लोक महात्मा के देव-दुर्लभ चरित का मर्म्मस्पर्शी और सरस वर्णन करके कवि गोकुलचन्द्र ने अपनी वाणी को बिमल करने की अच्छी चेष्टा की है। इस काव्य का कोई कोई स्थल अतिशय ओजस्वी है। काव्य सामयिक है; शब्द-चित्र सुन्दर है; पढ़ने, सुनने और गाने लायक़ है।

(सरस्वती)

पण्डित गोकुलचन्द्र शर्मा हिंदी के होनहार नवयुवक कवि हैं। उनकी प्रथम कृति "प्रणवीर प्रताप" का हिंदी जनता ने अच्छा स्वागत किया था। "गान्धी-गौरव में" कवि ने कविता के सम्बन्ध में अपनी उन्नतिशीलता का परिचय दिया है। आरम्भ में महात्मा जी का सपत्नीक चित्र देखने को मिलता है।

"गान्धी गौरव" पढ़ने वाला यह अनुभव किये बिना नहीं रह सकता कि:—

निःस्वार्थ देश-प्रेम से हो मलिनता मन की धुली,
तो भूरि भोगी भूप से है पूज्यतर कर्मठ कुली।

(प्रभा)

इस पुस्तकके रचयिता अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय पहिलेही दे चुके हैं 'प्रणवीर प्रताप' लिखकर वे ओजस्विनी पद्यमें स्वदेशप्रेम और आत्मबलिदान का एक इतिहास प्रसिद्ध चरित्र हिन्दी पाठकोंके सम्मुख रख चुके है। अब उन्होंने महात्मागान्धी का गौरवगान किया है। यह महात्माजी का केवल गौरव-गान ही नहीं है बल्कि पद्यमें उनकी पूरी जीवनी है। जन्म काल से लेकर आज पर्य्यंत उनके जीवनकी समस्त उल्लेखनीय घटनाओं का इसमें वर्णन है। पुस्तक में दस सर्ग हैं। भाषा बड़ी ओजस्विनी है और सब जगह एकसी सरल है। साधारण बातों के लिखने में भी रोचकता का लोप नहीं होने पाया है। भाषा में मधुरताका अभाव नही है। वीर-रसका भाव प्रधान जान पड़ता है। महात्मागान्धी का चरित्र आपही एक सुन्दर काव्य है फिर यदि वह भावमय पद्य में पढ़ने और मनन करने को मिले तो लोकोत्तर आनन्द हो। पण्डितजी को हम इस रचनाके लिए बधाई देते है और उनसे प्रार्थना करते हैं कि इसी प्रकार और भी आदर्श चरित्र रम्य पद्य में लिखकर साहित्य एवं देश सेवा करते रहें।

(स्वार्थ)

जयद्रथ-वध नाटक

मूल्य १० आना

(युक्त-प्रान्त की टैक्स्ट बुक कमिटी द्वारा स्वीकृत)

परशुराम नारायण पाटणकर, एम० ए०, नामक एक महाराष्ट्र सज्जन हैं। आप संस्कृत के बड़े विद्वान् और काव्यमर्म्म के उत्कृष्ट ज्ञाता हैं। जिन्हों ने आप के सटीक शाकुन्तल-नाटकको देखा है वे सहज ही समझ जायँगे कि काव्यमर्म्मज्ञता में आप कितने बढ़े चढ़े हैं। किसी समय आप सेंट्रल-हिन्दू-कालेज में संस्कृत के प्रधानाध्यापक थे। आपका बनाया हुआ एक नाटक "वीरधर्म्मदर्पण" नाम का है। उसकी भाषा संस्कृत है। महाभारत की जयद्रथ-वध सम्बन्धिनी कथा के आधार पर उसकी रचना हुई है। बड़ा अच्छा नाटक है। वीर और करुणा-रस का अच्छा परिपाक हुआ है। पात्रों के चरित-निर्वाह की भी भरसक चेष्टा की गई है। प्रस्तुत नाटक उसीका हिन्दी-रूपान्तर है। मूल के प्रायः समस्त गुण इसमें आगये हैं। भाषा साधु और कविता सरस है। इसका नान्दी-निवेदन तो बहुत ही हृदयद्रावक है। उसका अन्तिमांश सुन लीजिए—

किया था जिस में बालविनोद-निहारो उस भारत की गोद
लड़े भाई से भाई आज-हुआ सर्वत्र फूट का राज
बढ़ा दो शीघ्र मेल की बेल-दिखा दो अपने अद्भुत खेल
नाथ! पहना दो फिर जयमाल-तुम्हीं हो दुष्टों के हित काल

अनुवादक ने, इसमें अपनी शालीनता के उल्लेख में अपूर्व कवि-कौशल दिखाया है—

सत्कवि-सूर्य अस्त होने पर हो जाता जब निशा--निवास
दोषाकर कवि 'चन्द्र' तुल्य तब करता है नव कला-विकास

यह नाटक खेला भी जा चुका है। इसकी भूमिका से सूचित है कि दर्शकों ने इसे बहुत पसन्द किया था। इसमें आक्षेप योग्य शृङ्गार रस नहीं। इस कारण इसे स्कूलों के छात्र भी खेल सकते हैं।

(सरस्वती)

अनुवाद अच्छा हुआ है। इस में विशेषता यह है कि विद्यार्थियों के लिए किस प्रकार के नाटक लिखने चाहिए और कैसे अभिनय उनको करना उचित है इन बातों का पूरा ध्यान रक्खा गया है। यह नाटक खेला भी जाचुका है और दर्शकों की प्रशंसा का पात्र बन चुका है। पढने में रोचक और शिक्षाप्रद होते हुए यह खेलने योग्य भी है।

(स्वार्थ)

संस्कृत से अनुवाद रहने पर भी पुस्तक की उत्तमता में किसी बात की कमी नहीं होने पाई है। नाटक केवल पढ़ने के ही काम का नहीं, वरन् स्टेज पर भी खेला जा चुका है। छपाई आदि अच्छी है।

(चित्रमय जगत्)

शुद्ध हिन्दी में यह नाटक एक संस्कृत नाटक का अनुवाद है। इसके गद्य सरस तथा पद्य फड़कते हुए हैं।

(अभ्युदय)

पद्य-प्रदीप

मूल्य ॥)

पद्यप्रदीप में पं० गोकुलचन्द्र शर्मा की समय समय पर लिखी गई पद्यों का संग्रह प्रकाशित किया गया है। पुस्तक काव्य प्रेमियो के लिए पढ़ने और संग्रह करने योग्य है। क़ागज बढ़िया है और छपाई, सफ़ाई सुन्दर।

[प्रभा]

कविताएँ छोटी पर अच्छी है। अधिकांश कविताएँ देशभक्ति के भावों से पूर्ण हैं।

[सरस्वती]

कविताएँ राष्ट्रीय भावों से पूर्ण हैं।

[कर्मवीर]

कविताएँ अच्छी हैं-पढ़ने योग्य हैं। राष्ट्र-गीत, ग्रन्थ गौरव, पतङ्ग, पाठशाला प्रेम गुरुदेव, महाकवि भूषण के गति सम्बोधन, आशा, तिलक तिरोधान तथा भारतीय बाला नामक कवितायें विशेष उल्लेखनीय है। आशा है, पाठक इस पुस्तक का आदर करेंगे।

(ससार)

हिन्दी-डिक्टेशन

मूल्य ।=)॥

(मध्य प्रान्त और पंजाब की टेक्सट बुक कमिटी द्वारा स्वीकृत)

डिक्टेशन अर्थात् इम्ला के सम्बन्ध की यह पहली ही पुस्तक हिन्दी में बनी है। इससे भिन्न प्रान्तवासी

वे लोग भी जो हिन्दी लिखना सीखना चाहे यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं। हिन्दी स्कूलों के विद्यार्थियों के भी यह बड़े काम की है। अब तो स्कूल लीविंग परीक्षा में डिक्टेशन का भी एक परचा रहता है। उस परीक्षा के उम्मेदवारों को भी इससे बहुत सहायता मिल सकता है। इसमें पहले तो डिक्टेशन लिखने की प्रणाली बताई गई है, फिर डिक्टेशन लिखने में किन किन बातों को ध्यान में रखना चाहिये, इस पर लेखक महाशय ने अपने विचार व्यक्त किये हैं, जो बहुत ठीक हैं। डिक्टेशन लिखने में छात्र विशेष करके कौन कौन सी भूलें करते हैं, इसका भी विस्तृत विवेचन उन्होंने किया है विराम चिह्नों के प्रयोग की विधि भी आपने बताई है अन्त में अभ्यास के लिये, अच्छे अच्छे लेखकों के लेखों के अंश दिये गये हैं। जिस मतलब से यह पुस्तक लिखी गई है उसकी सिद्धि इससे अवश्य हो सकती है।

(सरस्वती)

इस पुस्तक के द्वारा लेखक ने हिन्दी के एक नये विषय की दिशा दिखलाई है। वह है हिन्दी की लेखन विभिन्नता। आरम्भ में तो लेखक ने पाठशाला के विद्यार्थियों से सम्बन्ध रखती हुई बातें ही इसमें लिखी हैं, किन्तु फिर आगे चलकर आपने कई ऐसी आवश्यक बातें बतलाई हैं, जो केवल नये लेखकों के ही काम की नहीं, वरन् बड़े २ सिद्धहस्त कहाने वाले लेखकों के लिये भी ध्यान देने जैसी हैं। भ्रान्तिकता के कारण अथवा एक बार की आदत पड़ जाने से प्रायः अच्छे २

विद्वान लोग भी उच्चारण में भूल कर जाते हैं, और फिर कभी २ तो वे भूल भरे शब्द अपने लेखों तक में लिख मारते हैं। इससे साहित्य में बड़ी गड़बड़ मच जाती है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक महाशय ने अधिकांश उन सब शब्दों को जो कि अशुद्ध उच्चारण के कारण उसी गलत रूप में लिखे जाते हैं-उनके शुद्ध स्वरूप-सहित व्याकरण के नियमों के साथ इसमें लिख दिया है। कई शंकास्पद बातों का भी इसमें आपने निवारण किया है। सारांश, पुस्तक स्वल्प मूल्य में बड़े काम की हुई है। हमारा विश्वास है कि, यदि हिन्दी संसार में इस पुस्तक का समुचित आदर हुआ तो लेखक महाशय एक बड़े ग्रथ द्वारा इस विषय का पूरा २ विवेचन भी अवश्य करेंगे।

(चित्रमय जगत्)